इकाई 22 तकनीकी और दस्तकारी

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपका परिचय दिल्ली सल्तनत की प्रमुख दस्तकारियों और तकनीकी से कराया जायेगा। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे:

- कृषि तकनीकी,
- वस्त्र तकनीकी,
- भवन निर्माण कला,
- कागज निर्माण और जिल्दसाज़ी,
- सैन्य तकनीकी,
- कलई,
- काँच निर्माण,
- जहाज़ निर्माण, और
- आसवन तथा किण्वन।

22.1 प्रस्तावना

ऐसी कोई भी मानव सभ्यता नहीं हुई जिसमें उसमें रहने वालों ने अपने जीवन हेतु किसी न किसी तकनीक अथवा शिल्पकारी का प्रयोग न किया हो। वास्तव में, तकनीकी का इतिहास किसी भी तरह से राजनैतिक व आर्थिक अध्ययन से कम महत्वपूर्ण नहीं है। तकनीकी किसी समाज की भौतिक संस्कृति का एक अविच्छेय

हिस्सा है।

इस इकाई में हम आपको सल्तनत कालीन तकनीकी के कुछ पहलुओं की जानकारी देंगे।

सबसे असाधारण बात यह थी कि अप्रवासी मुसलमानों द्वारा लाये गये तकनीकी के नये यंत्रों और नई शिल्प-कलाओं से भारतीय परिचित हुए जो इस्लामी संस्कृति-क्षेत्रों में उत्पन्न अथवा विकसित हुए थे। अतएव हमारी पद्धति यह रहेगी कि स्वदेशी हस्त-कलाओं और तकनीकी को नयी आयातित तकनीकी और हस्तकलाओं के साथ रख उनका अध्ययन करें।

एक बात की ओर आपका ध्यान जाएगा, वह यह कि उस काल में औजार, यंत्र और उपकरण लकड़ी और मिट्टी के बने होते थे, जबकि अति आवश्यकता पड़ने पर ही लोहे का प्रयोग होता था। आवश्यकता पड़ने पर रस्सी, चमड़े और बाँस का भी प्रयोग किया जाता था। इसी कारण वे कम खर्चीले होते थे।

हमने इसमें विभिन्न शिल्पकर्मियों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले यंत्रों व औजारों का अध्ययन नहीं किया है। उदाहरण के तौर पर: हथौड़ा, आरी, बसूला, रन्दा, सूआ, कुल्हाड़ी, बरमा, गेंती, बेलचा, **तोषा** (छेनी) और सन्दान (anvil) इत्यादि।

हमने खनन और धातुकर्म का उल्लेख भी नहीं किया है। धातुकर्म के अंतर्गत कच्ची धातु का प्रगलन, लकड़ी और चारकोल के प्रयोग द्वारा किया जाता था। वात्या भट्टी (blast furnace) उपलब्ध नहीं थी परन्तु उसका कार्य धौंकनियों (bellows) द्वारा किया जाता था। नमक और हीरों का खनन भी प्रमुख उद्योगों में से थे। नमक खारे समुद्र-जल के प्राकृतिक वाष्पीकरण द्वारा भी व्यवस्थित ढंग से इकट्ठा किया जाता था।

22.2 कृषि तकनीकी

इस खंड में हम कृषि संबंधित प्रमुख तकनीकी यन्त्रों का वर्णन करेंगे।

22.2.1 हल

कई सदियों पूर्व हल द्वारा फावड़ा या कुदाली का स्थान ले लिया गया था। सिंधु-घाटी की सभ्यता के एक केन्द्र कालीबंगा (राजस्थान) से प्राप्त पुरातत्वीय प्रमाण, "लौह-रहित" हल के प्रचलन के लिए, सुप्रसिद्ध है,

2. लोहे के फाल युक्त हल—मिफ्ताह-उल फुज़ाला

यद्यपि इसमें संशय है कि यह मनुष्यों द्वारा या बैलों द्वारा चलाया जाता था। तथापि, वैदिक युग में बैलों युक्त हल-कृषि एक निर्विवाद सत्य है। लौह-युग, जो गंगा के मैदानों में आर्यों के आवास के साथ पहचाना जाता है, ने हल के विकास में योगदान दिया। जहां पहले हल का सम्पूर्ण फ्रेम लकड़ी का बना होता था, अब लोहे का हल/फाल प्रयोग में लाया जाने लगा। लोहे के हल/फाल से अपेक्षाकृत कठोर भूमि की जुताई में बहुत सहायता मिली। मालवा में लगभग 1460 में संकलित एक फारसी शब्दकोश **मिफ्ताह-उल फुज़ाला** में एक चित्र दो-जुते हुए बैलों द्वारा एक लोहे के फाल युक्त हल को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है। यूरोप की तरह, भारत में घोड़ों द्वारा चलाए जाने वाले पहियों युक्त हल का निर्माण इसलिए नहीं हुआ कि यहां का हल वजन में हल्का था जो नरम मिट्टी के लिए उपयुक्त था।

22.2.2 बोआई

बोआई के लिए छिटका-बोआई प्रणाली अपनाई जाती थी। कंधों पर रखे हुए कपड़े के थैले में से बीजों को बाहर निकाल कर उन्हें हाथों से ही इधर-उधर छिड़क दिया जाता था। भारत में बीजवपित्र (seed drill) के समय-निर्धारण को लेकर विवाद है: कुछ लोग इसका उद्गम वैदिक-काल में मानते हैं। कुछ भी हो, भारत के पश्चिमी तट के समानान्तर इसके प्रयोग का एकमात्र सकारात्मक प्रमाण एक पुर्तगाली—बारबोसा (लगभग 1510)—द्वारा सिंचन कृषि के संदर्भ में प्राप्त होता है।

22.2.3 फसल-कटाई, गुहाई और ओसाई

फसल की कटाई हंसिया द्वारा की जाती थी। गुहाई का कार्य बैलों द्वारा किया जाता था जो खलिहान में जई के ऊपर गोल-गोल चक्कर लगाते थे। "पवन-शक्ति" का उपयोग ओसाई के लिए भूसी को अन्न-कणों से अलग करने के लिये किया जाता था।

22.2.4 सिंचाई के साधन

खेतों की सिंचाई हेतु जल प्राप्त करने के कई साधन थे। वर्षा का पानी एक प्राकृतिक स्रोत था। यह जल तालाबों और कुण्डों में इकट्ठा हो जाता था जिसे सिंचाई हेतु प्रयोग में लाया जाता था। बाढ़ अथवा आप्लावन द्वारा बने नदी नालों का भी इसी उद्देश्य से उपयोग किया जाता था। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण नियंत्रित साधन, विशेष तौर पर उत्तर-भारत में, कुंओं का जल था। सिंचाई के साधनों का उद्देश्य कुंओं से जल को बाहर निकालना था। ये कुंए अधिकतर पक्के (ईंट-पत्थरों के) होते थे जिनकी दीवारें ऊंची और उन्हें घेरता हुआ चबूतरा होता था। कच्चे कुंए भी थे लेकिन ये पानी निकालने हेतु बहुत टिकाऊ या मजबूत नहीं माने जाते थे।

मोटे तौर पर पानी को बाहर निकालने हेतु 5 साधन अथवा तकनीक प्रचलित थीं:

I) सबसे सरल तरीका रस्सी और बाल्टी द्वारा हाथों से, बिना किसी यंत्र की सहायता के, पानी बाहर खींचना था। वास्तव में बाल्टी आकार में छोटी होती थी जिसके फलस्वरूप इस विधि द्वारा बड़े विस्तृत खेतों को पानी नहीं दिया जा सकता था। परन्तु, हम छोटे खेतों में फसलों को इस प्रणाली द्वारा सिंचित किए जाने की संभावना से इंकार नहीं कर सकते, विशेषतः सब्जियों के लिए जिन्हें अधिक पानी की ज़रूरत नहीं रहती।

II) दूसरी विधि चरखी अथवा घिर्री के प्रयोग द्वारा रस्सी-बाल्टी द्वारा हाथों से ही पानी बाहर निकालने की थी। निश्चय ही, चरखी के कारण मानव-ऊर्जा की आवश्यकता कम हो गयी और अपेक्षाकृत बड़े आकार के थैले या बड़ी बाल्टियां रस्से से बांधी जा सकती थी। इसका उपयोग घरेलू कार्यों के लिए भी विशेषतः महिलाओं द्वारा किया जाता था।

III) रस्सी-बाल्टी-चरखी प्रणाली की एक उन्नत विधि में मानव शक्ति के स्थान पर बैलों की एक जोड़ी का प्रयोग किया जाने लगा। अब यह विशिष्ट रूप से सिंचाई के लिए प्रयोग में लिया जाने वाला विशेष यंत्र हो गया। उत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों में आज भी यह प्रचलन में है जिसे **चरस** कहा जाता है। यह एक बहुत बड़ा थैला होता है जिससे यह आभास होता है कि एक बार ऊपर खींचने में अत्यधिक मात्रा में पानी बाहर निकाला जा सकता है। इसके अलावा बैलों के चलने का मार्ग ढलावदार होता था जिसकी लंबाई कुंए की गहराई के अनुरूप होती थी। इस विधि द्वारा प्राप्त जल पीने, बर्तन धोने या कपड़े धोने के लिए प्रयोग में नहीं लिया जाता था। इन पांचों प्रणालियों में से, **चरस** एक बहुउद्देशीय साधन नहीं था। यह पूर्णरूप से सिंचाई हेतु ही प्रयोग में लाया जाता था, इस तथ्य को आज तक अनुभव नहीं
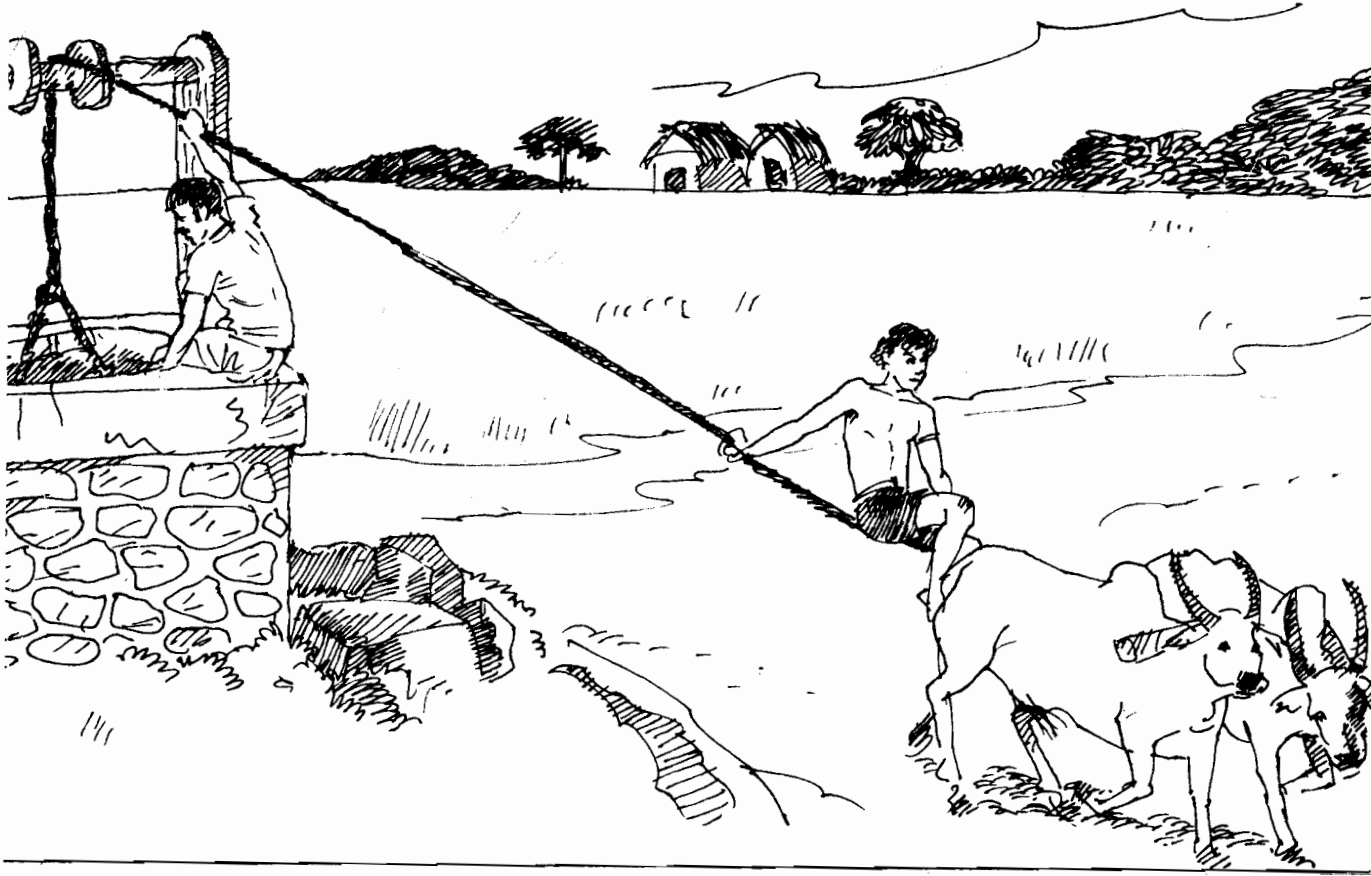
3. चरस : पशु शक्ति का प्रयोग

(V) चौथी विधि जो अर्द्ध-यांत्रिक प्रकृति की थी, 'लीवर के प्रथम श्रेणी सिद्धांत' पर आधारित थी। इसमें एक अभिलम्ब बल्ली या पेड़ के तने (इस कार्य हेतु विशेष रूप से बनी) की धरनी से एक लम्बी रस्सी बांधी जाती थी जिससे यह झूलने वाली स्थिति में रहे। बाल्टी को रस्सी से बांधा जाता था जिसके दूसरे सिरे को कुएं के ऊपर लटकती हुई बल्ली के एक सिरे से बांधा जाता था। इस बल्ली के दूसरे सिरे से एक प्रतिभार लटकाया जाता था जो पानी से भरी बाल्टी से थोड़ा अधिक भारी होता था। इस प्रकार भार और प्रतिभार के दोनों किनारों पर होने से बल्ली के मध्य में आलम्ब उत्पन्न होता था। इस प्रक्रम में इसे प्रयोग में लाने वाले व्यक्ति को बहुत कम प्रयास करने की आवश्यकता पड़ती है। यह विधि मिस्र में **शदूफ** के नाम से जानी जाती है। संस्कृत में इसे **तुला** कहते हैं, परन्तु बिहार और बंगाल में इसे **ढेंकली** या **लाट/लाठा** कहा जाता है।

V) पांचवी पानी निकालने की प्रणाली **साकिया** अथवा **'रहट'** थी। ऊपर वर्णित चार प्रक्रमों में से किसी में भी पहिये मूलभूत अवयव नहीं थे। इस जल-चक्र को जल-यंत्र कहा जा सकता है क्योंकि इसमें **गियर प्रणाली** की व्यवस्था थी। गियर प्रणाली के साथ हम तकनीकी रूप से एक बहुत उन्नत अवस्था में प्रवेश करते हैं: इस पर केवल हाल ही में बिजली के ट्यूबवैलों द्वारा श्रेष्ठता स्थापित की गयी।

साकिया के उद्गम को लेकर काफी विवाद है: क्या मुसलमानों के भारत में आने से पूर्व इसका अस्तित्व था अथवा क्या यह तुर्कों के माध्यम से भारत में आयातित हुई? भारत में इसका प्रारंभिक रूप एक चक्र और उसके घेरे से लगे हुए घड़े अथवा मिट्टी के बर्तन था। संस्कृत में इसे **अरघट्टा** अथवा **अरहट** कहा जाता था। अंग्रेजी में इस यंत्र को **नोरिया** कहा जाता था जो अरबी शब्द **नौरह** का बिगड़ा हुआ रूप है। इसे मानव शक्ति द्वारा संचालित किया जाता था। इसे उथले पानी या पानी के खुले स्रोत पर प्रयोग किया जाता था जैसे नहर, जलाशय का नदियाँ जिनमें पानी का स्तर ऊपर तक हो। अतः इसका प्रयोग कुओं पर बिल्कुल नहीं किया जा सकता था।

दूसरे चरण में इस यंत्र का प्रयोग कुओं पर किया गया। इस प्रकार के प्रयोग के लिए पहिये से जुड़े हुए पानी के घड़ों को हटा कर इन घड़ों को एक माला या एक लम्बी कड़ी के रूप में जोड़ा गया जो इतनी लम्बी होती थी कि कुएं के पानी के स्तर पर पहुंच सके। यह माला या कड़ी दोहरी रस्सी से बनाई जाती थी और कोई सिरा खुला नहीं होता था। इसमें घड़ों को लकड़ी के टुकड़ों से जोड़ा जाता था। महत्वपूर्ण बात यह है कि यंत्र के इस परिवर्तित रूप में लिए अरबी या फारसी में कोई पृथक् नाम नहीं है। संस्कृत में इसे **घटियंत्र** (पात्रों का यंत्र) कहा गया हालांकि सामान्य तौर पर दोनों प्रकार के **नोरिया** के लिए **अरघट्टा** या **अरहट** रूप प्रचलित रहा। यह भी मानव शक्ति द्वारा ही संचालित किया जाता था।

तीसरे तथा अन्तिम चरण में हम इस यंत्र में तीन नए परिवर्तन पाते हैं।

i) इसमें दो अतिरिक्त पहिये लगाए गए,
ii) गियर पद्धति का प्रयोग किया गया, तथा
iii) पशु शक्ति का प्रयोग।

इसमें एक लैन्टर्न पहिया, जिस पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर छोटी-छोटी खूटियाँ लगी रहती थीं, एक धुरी से जोड़ा जाता था जो पशु शक्ति द्वारा क्षैतिज दिशा में घूमता था। इससे जुड़ा एक अन्य उर्ध्वाकार पहिया था जो एक धुरी से तीसरे पहिये से जुड़ा हुआ था। इस तीसरे पहिये में घड़ों की माला लगी रहती थी जिससे कुएँ से पानी निकलता था। इस प्रकार यह गियर व्यवस्था पशु-बल के उपयोग हेतु थी। मुख्य रूप से इसमें लेन्टर्न-चक्र (वह चक्र जिसमें घड़े लगे हुए हों) के क्षैतिज बल (horizontal motion) को कुएं के ऊपर लगे हुए चक्र के लिए उदग्र बल (vertical motion) में परिवर्तित करना होता था।
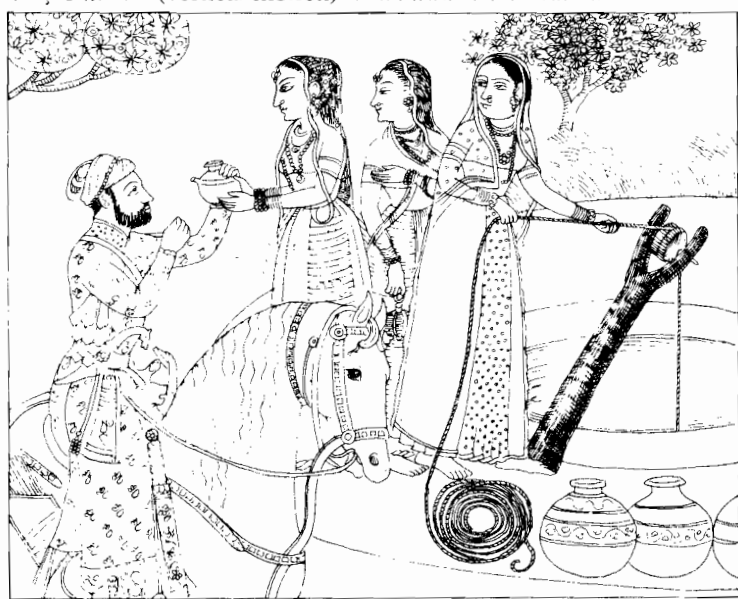
5· चर्खी के प्रयोग द्वारा पानी बाहर निकालने की विधि
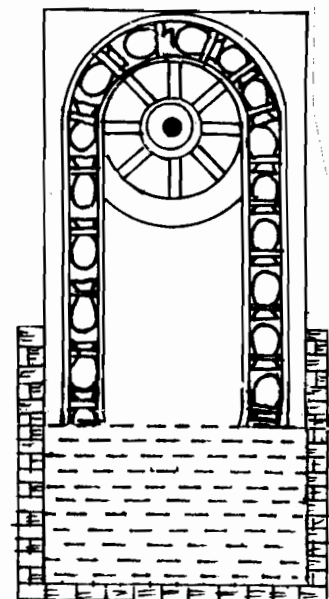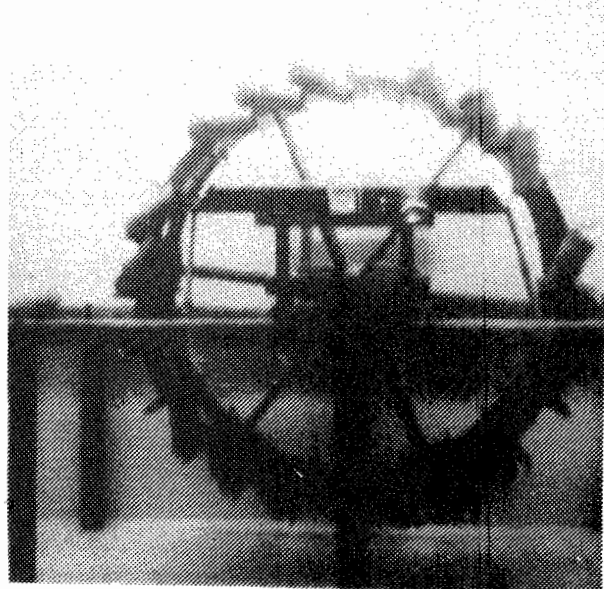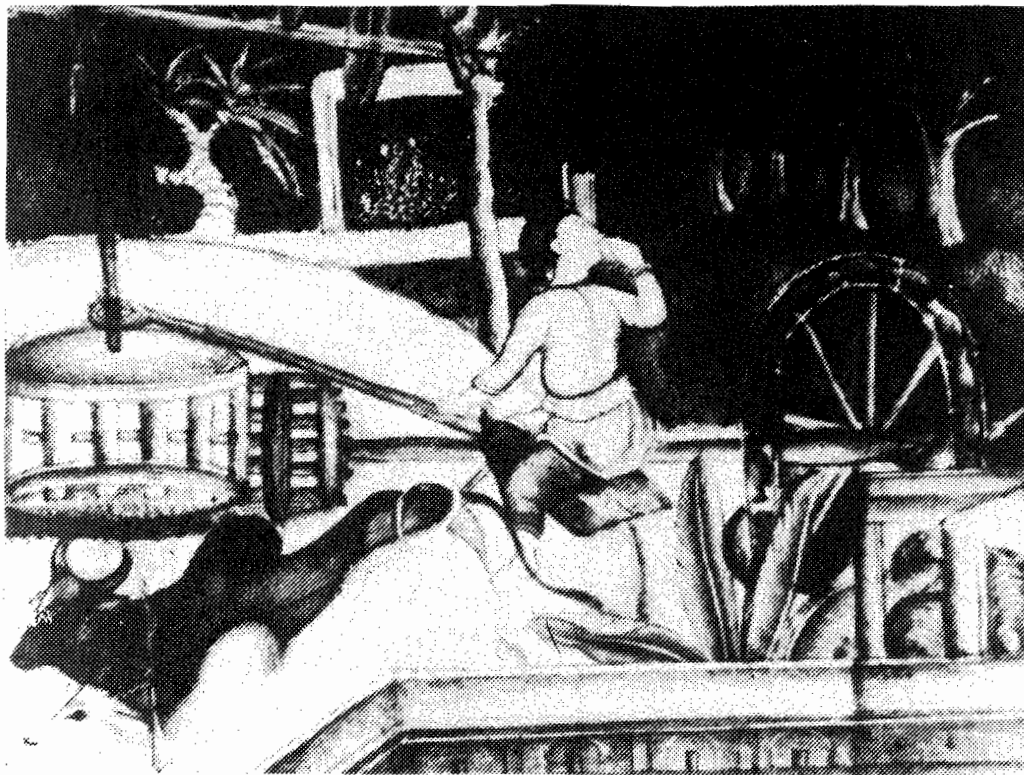
6. (स) साक़िया — नोरिया की तीसरी अवस्था — देखें गियर व्यवस्था के साथ तीन चक्र; तीसरा चक्र घड़ों के साथ

इस विवाद में कुछ आधुनिक विद्वान भ्रमवश **नोरिया** की प्रथम दो अवस्थाओं को **साकिया** के समरूप समझते हैं। लेकिन अब आप जान गये हैं कि **साकिया** न केवल अपनी परिकल्पना बल्कि अपने घटकों की दृष्टि से भी मूलतः भिन्न हैं। एक अर्थगत भूल **साकिया** के लिए भी **अरघट्टा** और **अरहट्टा** (आधुनिक **रहट**) शब्दों का प्रयोग था जब यह प्रारंभिक मध्यकाल में मुसलमानों द्वारा लाया गया। वास्तव में प्राचीन भारत में पशुओं द्वारा चलाए जाने वाले जल-चक्रों का कोई प्रमाण नहीं है।

यहां उल्लेखित जल को कुंओं से निकालने की 5 विधियों को दो मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है:

अ) आवर्तक अथवा असतत जल आपूर्ति प्रणाली, और

ब) निरंतर आपूर्ति व्यवस्था।

प्रथम चार विधियों को पहले और पांचवी प्रणाली को दूसरे वर्ग में रखा जा सकता है। इन साधनों को चलाने के स्रोत के आधार पर, अर्थात मानव द्वारा संचालित और पशुओं द्वारा संचालित, प्रथम और चौथी विधि को मानव शक्ति वर्ग में और अन्य को पशु शक्ति वर्ग में रखा जा सकता है। चूंकि जल को दीवारों से ऊपर उठाना होता था पांचवीं को छोड़ सभी प्रणालियों में दो वस्तुएं समान रूप में थीं: रस्सी और बाल्टी/थैले। बाल्टी अथवा थैले का आकार प्रयोग में लाई जा रही 'शक्ति' के अनुपात में होता था।

अन्य कई औजार जैसे, बेलचा, गेंती और खुरपी भी होते थे जो न केवल कृषि क्षेत्र में बल्कि बागवानी में भी काम आते थे।

हिन्दुस्तान का अधिकांश भाग समतल भूमि पर स्थित है। यद्यपि हिन्दुस्तान में इतने अधिक नगर तथा इतनी विलायतें हैं किन्तु किसी स्थान पर भी जल-धारायें नहीं हैं। नदियाँ तथा कहीं-कहीं पर स्थित जलाशय यहां की जल-धारायें हैं। कुछ नगरों में जहां नहरें खोद कर जल लाना सम्भव है वहां भी नहीं लाया जाता। इसके अनेक कारण हैं। इनमें से एक कारण यह है कि यहां की कृषि तथा यहां के उद्यानों को जल की आवश्यकता नहीं होती। खरीफ़ की फ़सल वर्षा के जल से ही हो जाती है। यह बड़ी ही विचित्र बात है कि रबी की फ़सल भी जल के बिना हो जाती है। पौधों को एक दो वर्ष तक डोल अथवा रहँट से सींच दिया जाता है। तत्पश्चात् उन्हें सींचने की कोई आवश्यकता नहीं होती। कुछ तरकारियों को निरन्तर सिंचाई की आवश्यकता होती है।

रहट

लाहौर, दीबालपुर, सेहरिन्द तथा उस क्षेत्र के स्थानों में रहट से सिंचाई होती है। दो रस्सियों को जो गोलाई में कुएं तक पहुंच जायें ले लिया जाता है। दोनों रस्सियों के बीच-बीच में लकड़ियां बांध दी जाती हैं। लकड़ियों में घड़े बांध दिये जाते हैं। जिन दोनों रस्सियों में लकड़ियां तथा घड़े बंधे रहते हैं उन्हें उस चर्खी पर रख देते हैं जो कुएँ पर रहती है। इस चर्खी के धुरे से एक दूसरी चर्ख़ी जुड़ी रहती है उसके निकट ही खड़े धुरे पर एक अन्य चर्ख़ी होती है। इस चर्खी को बैल घुमाता है। इसके दांत चर्ख़ी के दांत से जुड़े रहते हैं। इस प्रकार वह चर्ख़ी जिस पर घड़े होते हैं घूमती है। जहां जल गिरता है वहां एक कठौता होता है और जल नालियों से होता हुआ प्रत्येक स्थान पर पहुँच जाता है।

चरसा

आगरा, चन्दवार, ब्याना तथा उस क्षेत्र में डोल से सिंचाई होती है। इसमें बड़ा परिश्रम करना पड़ता है और यह बड़ी ही भद्दी विधि है। कुएँ के किनारे दो शाखाओं वाली एक लकड़ी जाती है। इन दोनों के मध्य में एक गड़ारी लगा देते हैं। एक बहुत बड़े डोल में एक रस्सी जाती है। रस्सी गड़ारी पर रख दी जाती है और उसका एक छोर बैल से बांध दिया जाता है आदमी को बैल को हांकना पड़ता है तथा दूसरे को डोल को खाली करना पड़ता है। जब बैल डोल कर वापस होता है तो रस्सी बैल के मार्ग पर जिस पर मूत्र तथा गोबर पड़ा रहता है लथेड़ती और फिर वही रस्सी कुएँ में पहुँचती है।

डोल

कुछ खेतों को जिन्हें सिंचाई की आवश्यकता होती है स्त्री तथा पुरुष डोल भर-भर कर सींचते हैं।

. बाबर द्वारा वर्णित सिंचाई के विभिन्न तरीके (बाबरनामा, अनुवाद, ए.ए. रिजवी, मुगल कालीन भारत-बाबर, भाग 2, पृ. 170-71.

बोध प्रश्न 1

1) 13-15वीं शताब्दियों के मध्य कुंओं से जल को निकालने के लिए प्रयोग में आने वाली विभिन्न प्रणालियों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) गहराई से पानी को निकालने की **'साकिया'** में प्रयोग में की जाने वाली तकनीक का वर्णन कीजिए?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) सही वाक्य के आगे (√) और गलत वाक्य के आगे (×) चिह्न लगाइयेः
   1) कच्चे कुएं बहुत अधिक पानी निकालने हेतु टिकाऊ होते थे। ( )
   2) **ढेंकली** विशुद्ध लीवर सिद्धान्त पर कार्य करती है। ( )
   3) **साकिया** के अंतर्गत गियर प्रणाली और पशु-शक्ति का प्रयोग किया जाता था। ( )
   4) **चरस** का उपयोग मुख्य रूप से घरेलू कार्यों हेतु किया जाता था। ( )

22. 3 वस्त्र तकनीकी

सल्तनत काल में तुर्कों द्वारा वस्त्र-निर्माण के क्षेत्र मे बहुत सी तकनीकें प्रयोग में लाई गईं।

22.3.1 ओटाई, धुनाई और कताई

कपास की खेती का संबंध कृषि तकनीकी से है। कपास के गोलों को इकट्ठा करने के पश्चात् इसको बुनने योग्य बनाने के लिए तीन मूलभूत चरणों से गुजरना पड़ता हैः
1) ओटाई अथवा बीजों को अलग करना,
2) धुनाई अथवा तंतुओं को ढीला करना,
3) कताई अथवा सूत बनाना।

प्रथम प्रक्रिया दो तरीकों से की जाती थीः
(अ) रोलर और बोर्ड विधि, तथा
(ब) चर्खी

इस प्रकार बीजों से अलग की हुई रूई को, तंतुओं को अलग व उन्हें मुलायम करने के उद्देश्य से, डण्डों अथवा प्रत्यंचा (bow string) से धुना जाता था (फारसी में **नद्दाफी** और हिन्दी में **धुन्ना)**। कताई का कार्य पारंपरिक विधि से, तकली (फारसी में **दूक)** के साथ एक फिरकी जो इसे नियंत्रित करती थी, होता था।

वस्त्र निर्माण के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण तकनीकी क्रान्ति 13-14वीं शताब्दी में मुसलमानों द्वारा भारत में लाए **चरखें** द्वारा संभव हुई। प्राचीन भारत में **चरखें** का कोई अस्तित्व नहीं था। चरखों का प्रथम लिखित संदर्भ हमें इसामी के **फुतुह-उस सलातीन** (1350 ई.) में प्राप्त होता है। इसके (**चरखे**) प्रयोग से तकली का महत्व समाप्त नहीं हो गया बल्कि इसने तकली के परिक्रमण में वृद्धि कर दी। **चरखे** के लकड़ी के फ्रेम के एक किनारे तकली को लगाया जाता था जिसे दूसरी ओर स्थित चक्र पर लगे पट्टे से जुड़े होने के कारण घुमाया जा सकता था। इस प्रकार चरखे में शक्ति संचालन (पट्टे के चलने के) और गतिपालक चक्र (fly wheel) के सिद्धान्त निहित थे जिसके फलस्वरूप परिभ्रमण की अन्तरीय गतियां (differential speed of otation) प्राप्त होती थी। इस बात पर विवाद है कि कब इस यंत्र के साथ एक हत्थे या **क्रैन्क हैंडिल** को ऽग्न किया गया। लेकिन यह विवाद अब **मिफ्ताह-उल फ़ुज़ाला** (ई. 1530) के एक चित्र की सहायता समाप्त हो गया है। इसमें **चरखे** को फ्रेम के साथ लगे हत्थे से घुमाते हुए दर्शाया गया है।

एक आकलन के अनुसार एक ही समय में एक **चरखा** एक तकली की तुलना में छः गुना अधिक सूत निर्मित कर सकता है। इसके परिणामस्वरूप अधिक सूत निर्मित होने लगा और लगातार अधिक वस्त्र भी बनने लगे होंगे।

यहां यह बताना आवश्यक है कि तकली से निर्मित सूत बहुत महीन किस्म का होता था जबकि चरखे द्वारा मोटे कपड़ों हेतु मोटा सूत निर्मित होता था।
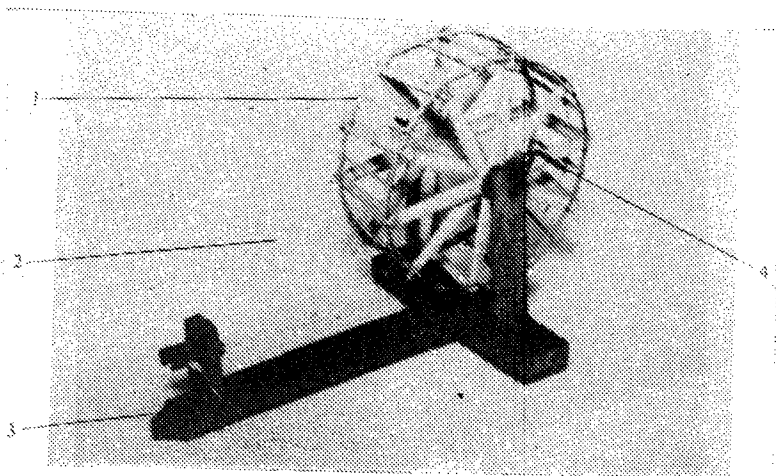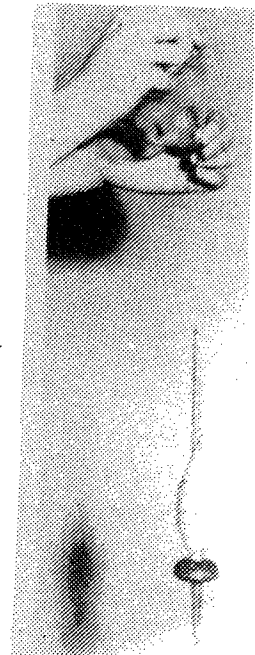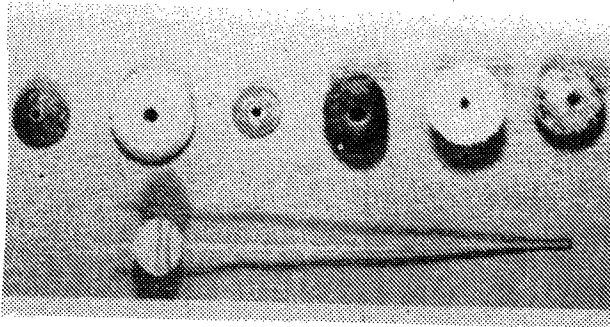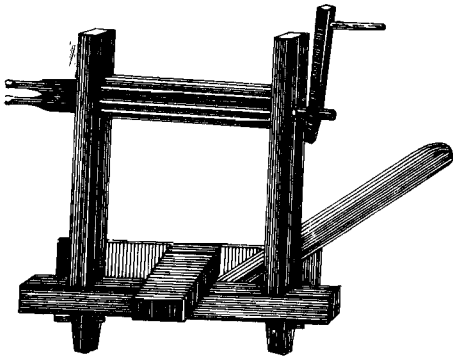
7. (a) Ginning: roller and board method
   (b) Carding
   (c) Spindle
   (d) Spinning with the spindle
   (e) Spinning-wheel: 1 spindle 2. belt
   3. wheel 4. handle

22.3.2 बुनाई

क्षेप-भरनी प्रकृति के क्षैतिज करघें (horizontal loom of throw shuttle type) का प्रयोग साधारण या लहरिएदार मोटे रेशम के वस्त्रों का निर्माण करने में होता था। यह कहना मुश्किल है प्राचीन भारत में पैरों द्वारा चलाये जाने वाले करघे का प्रयोग होता था, किन्तु इस करघे का प्रथम प्रमाण हमें लगभग 1530 में चित्रित **मिफ्ताह-उल फुज़ाला** (लगभग 1469 ई.) से प्राप्त होता है। इस करघे में बुनकर अपने पैरों से धागों के तानों को ऊपर उठा और फैला सकता था जबकि उसके हाथ मुख्यतः भरनी और शेड पर कार्य करते थे। इससे बुनाई की गति में वृद्धि आयी। पैटर्न बुनाई (एक ही साथ विभिन्न रंगों की) के संदर्भ में एक विद्वान का मानना है कि इस उद्देश्य हेतु **ड्रा लूम** लगभग 1001 ई. के दक्षिण भारत में उपलब्ध था। लेकिन इसके संबंध में संदेह है। इस मत के जवाब में यह कहा गया कि शायद इसे मुसलमानों द्वारा 17वीं शताब्दी के अंत में भारत लाया गया था।
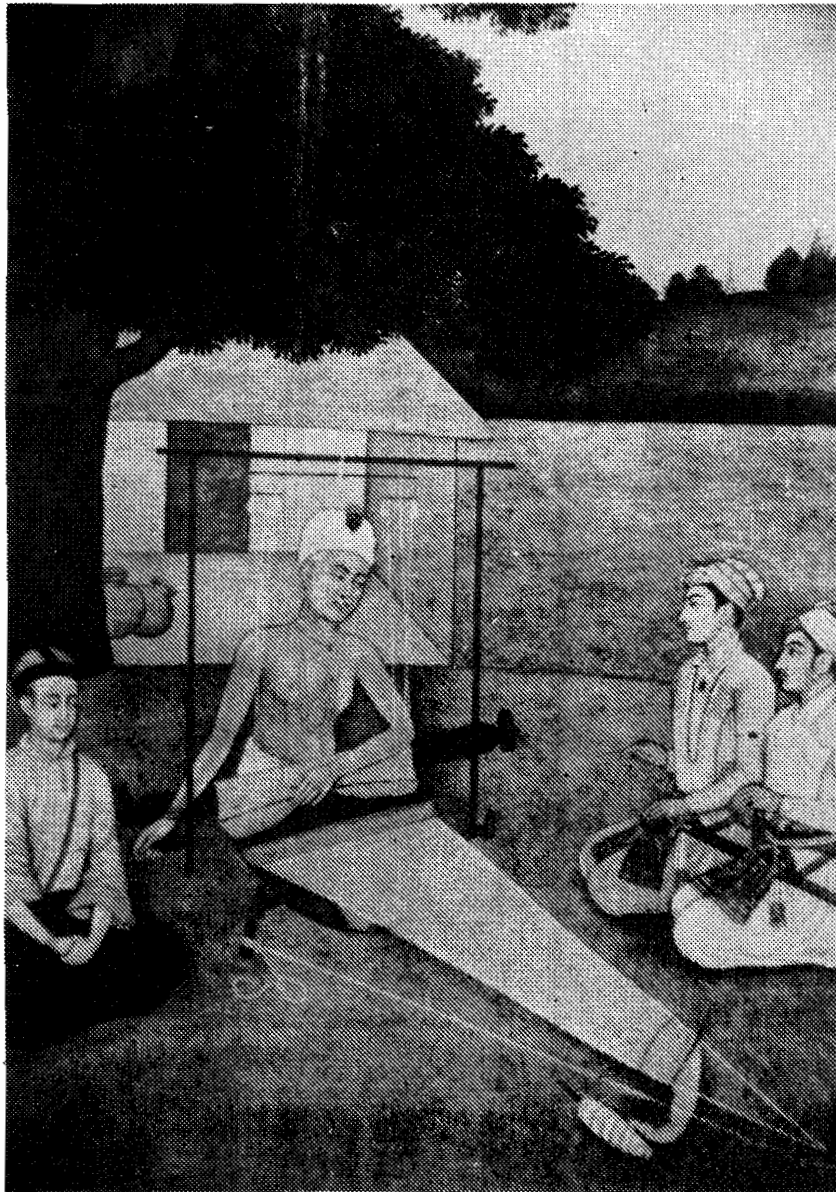
10. पैरों द्वारा चलाये जाने वाले करघे का 16वीं शताब्दी का एक चित्र (कार्यरत कबीर)

22.3.3 रंगाई और छपाई

वनस्पति और खनिज स्रोतों से प्राप्त विभिन्न रंगों को रंगाई हेतु प्रयोग में लाया जाता था। नीला, मजीठ और लाख इत्यादि अधिक प्रचलित थे। नील का प्रयोग विरंजन (bleaching) और रंगाई दोनों के लिए होता था। तेज रंगों के लिए कई पदार्थ जैसे फिटकरी मिलाए जाते थे। भारतीय रंगरेज निमज्जन (immersion), बंधेज जैसी कई विधियों को अपनाते थे। परन्तु ठप्पा-छपाई (**छापा**) प्राचीन भारत में ज्ञात नहीं थी। भारत में इसको लाने का श्रेय कुछ विद्वान मुसलमानों को देते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) 13वीं-15वीं शताब्दियों में ओटाई के लिए प्रचलित विधियों का वर्णन कीजिए?

....

....

....

....

2) चरखे पर एक टिप्पणी लिखें।

....

....

....

3) बुनकरों द्वारा 13वीं-14वीं शताब्दियों में अपनाई जाने वाली तकनीकों का वर्णन करें।

....

....

....

22.4 भवन निर्माण

इस भाग में हम मुख्यतः तुर्कों द्वारा भारत में लायी गई भवन निर्माण संबंधी तकनीकों का अध्ययन करेंगे।

22.4.1 चूना-गारा

प्राचीन भारत में निर्माण के पारंपरिक मूलभूत अवयव मिट्टी, पत्थर, लकड़ी और कभी-कभी ईंटें थीं। साधारण चुनाई का पदार्थ या गारा साधरणतया मिट्टी व पानी से मिलकर बना होता था। इसमें भूसा मिलाकर इसे उन्नत किया जाता था जो प्लास्टर के उपयोग में भी आता था। परन्तु चूना-गारा निश्चित रूप से दिल्ली सल्तनत के काल में बाहर से आए मुसलमानों द्वारा यहां लाया गया।

चूना-गारे के मुख्य अवयव चूना और सुर्खी (कूटी हुई ईंटें) होते थे। चूना, इसके प्राप्ति स्रोत के आधार पर कई प्रकार का होता था। चूनें के दो मुख्य स्रोत जिप्सम और बजरी (कंकड़) होते थे जिन्हें भट्टियों में जलाकर अधबुझा चूना प्राप्त किया जाता था। इसे पानी के साथ मिलाकर बुझा चूना प्राप्त किया जाता था। इस मिश्रण में अब सुर्खी मिलायी जाती थी। इसके पश्चात गारे को अधिक चिपचिपा बनाने हेतु इसमें कई प्रकार के श्लेषीय, लसदार और रालदार चुनाई कराकों जैसे गोंद, दालों, गुड़ इत्यादि को मिलाया जाता था।

22.4.2 मेहराब और गुंबद/मेहराबी छत

चूने-गारे के प्रयोग का एक परिणाम ईंटों के अधिक उपयोग के रूप में निकला क्योंकि इसने ईंटों के भवनों को अधिक टिकाऊ बना दिया। दूसरा महत्वपूर्ण परिणाम यह था कि चूने-गारे ने मेहराब के निर्माण को सही मायनों में संभव बनाया। वास्तव में, वैज्ञानिक पद्धति से मेहराब के निर्माण में ईंटों व पत्थरों की जो व्यवस्था होती है उसके लिए एक मजबूत चुनाई पदार्थ की सख्त जरूरत थी जो डाट पत्थरों (**voussairs**) को एक साथ स्थायी रूप से रखे। चूने-गारे ने इस आवश्यकता को पूर्ण किया। इससे तुर्कों के आने से पूर्व के भारतीय भवनों में मेहराबों की लगभग अनुपस्थिति को समझा जा सकता है। लेकिन कुषाण युग इसका अपवाद था: कौशाम्बी (इलाहाबाद के निकट) में किए गए उत्खनन से छोटी खिड़कियों पर बनी (दरवाजों पर नहीं) मेहराबों का अस्तित्व सामने आया है। जैसा कि आप जानते हैं कुषाण मध्य एशिया से यहां आए थे अतएव वे मेहराब निर्माण से परिचित थे। उसके पश्चात् वैज्ञानिक रूप से बनी मेहराबों का एक भी प्रमाण मुसलमानों के यहां आने तक उपलब्ध नहीं है। मेहराब का एक अन्य रूप कदलिकाकृत (**corbelled**) होता था जो धरणिक (**trabeate**) निर्माण प्रक्रिया का ही एक रूप था अर्थात् स्तम्भ-व-धरनी (**pillar-and-beam**) तकनीक जो पूर्व मुस्लिम भारतीय स्थापत्य कला की एक विशिष्टता थी।
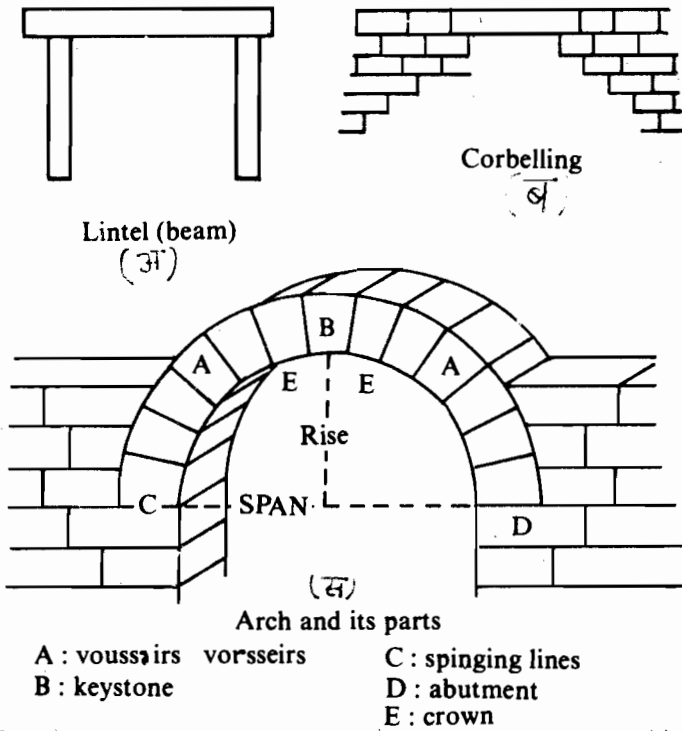
. (अ) धरनी व स्तम्भ . (ब) कदलिकाकृत

. (स) वैज्ञानिक तरीके से बनायी गई मेहराब और उसके भाग (अ) डाट पत्थर (ब) मुख्य पत्थर

मेहराब से गुंवद (मेहराबी या गुंवदी छत) की ओर प्रगति एक प्राकृतिक विकासक्रम था क्योंकि गुंबद निर्माण बिना मेहराव के ज्ञान के संभव नहीं था। इसलिए यह कहा जाता है कि एक गुंबद वास्तव में 360 डिग्री पर बनी एक संपूर्ण मेहराब है। दूसरे शब्दों में, गुंबद का निर्माण वैज्ञानिक तरीके से बनायी गई मेहराबों के प्रतिच्छेदन के सिद्धान्त पर किया जाता था (टिप्पणी : गुंवदों की समानता भ्रमवश बौद्ध स्तूपों के साथ न की जाए)।

22.5 कागज निर्माण और जिल्दसाज़ी

अब आप जानते हैं कि बाहर से आये मुसलमानों ने किस प्रकार इस्लामिक सांस्कृतिक क्षेत्रों में विकसित हुई विभिन्न प्रकार की तकनीकों और औजारों को भारत में लाने का कार्य किया। कागज निर्माण ऐसा ही एक योगदान था।

प्राचीन भारत में लेखन हेतु कई साधन थे : शिलाएं, ताम्र पट्टिकाएं, रेशम और सूती वस्त्र और विशेष रूप से निर्मित ताड़ की पत्तियाँ (तालपत्र) और भुर्ज की छाल (बुर्जपत्र)। अंतिम दो का प्रयोग पुस्तकें लिखने हेतु किया जाता था।

कागज का निर्माण सर्वप्रथम पहली शताब्दी ई. के लगभग चीन में हुआ। यह बाँसों की लुग्दी द्वारा निर्मित किया गया। अरब-मुसलमानों ने कागज निर्माण उन चीनियों द्वारा सीखा जिन्हें 751 ई. में किसी लड़ाई में बन्दी बनाया गया था। शीघ्र ही अरबों ने इस विद्या से चिथड़ों और पुराने मलमल से कागज बनाना विकसित किया।

भारतीय शायद 7वीं शताब्दी ई. में कागज के बारे में परिचित थे परन्तु उन्होंने इसका उपयोग कभी भी लेखन सामग्री के रूप में नहीं किया। जब चीनी यात्री आइ चिंग ने भारत की यात्रा की तो उसे चीन ले जाने के लिए संस्कृत पांडुलिपियों की नकल हेतु भारत में कागज प्राप्त नहीं हुआ। उसके स्वयं के कागज के समाप्त हो जाने के कारण उसने अपने मित्रों को चीन से उसे कागज भेजने हेतु संदेश भेजा। दिल्ली सल्तनत के काल में कागज का कई उद्देश्यों के लिए प्रयोग होता था, विशेषतः पुस्तकों, **फरमानों** और विभिन्न व्यावसायिक तथा प्रशासकीय दस्तावेज़ों हेतु। कागज दिल्ली सल्तनत में इतनी बड़ी मात्रा में उपलब्ध था कि दिल्ली के मिठाई बेचने वाले अपने ग्राहकों को मिठाइयाँ कागज से निर्मित पैकेटों, जो **पुड़ियां** कहलाती थी, में देते थे जो आज भी भारत में प्रचलित हैं। लेकिन कागज निर्माण केन्द्र कम व दूर-दूर थे। 14वीं शताब्दी

के चीनी समुद्री यात्री मा हुआन से हमें ज्ञात होता है कि बंगाल में कागज निर्माण होता था। तथापि अधिकांश कागज की आवश्यकता को इस्लामिक देशों, विशेषतः समरकंद और सीरिया, द्वारा कागज को आयातित कर पूरी की जाती थी।

कागज पर पुस्तकों के लिखने की प्रवृत्ति के साथ ही जिल्दसाज़ी की एक नवीन कला का भारत में विकास हुआ क्योंकि उसकी तकनीक प्राचीन लेखन सामग्री की पत्तियों को (**तालपत्रों** और **भुर्जपत्रों**) जोड़ने की कला से भिन्न थीं।

बोध प्रश्न 3

1) भवन निर्माण कला के क्षेत्र में तुर्कों के योगदान का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) भारत में कागज निर्माण पर 5 पंक्तियों में लिखें।

....

....

....

....

....

22.6 सैन्य तकनीकी

इस भाग में हम केवल निम्नलिखित तीन चीज़ों का अध्ययन करेंगे :

1) रक़ाब,
2) नाल, और
3) बारूद।

22.6.1 रक़ाब

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि लोहे के रक़ाब के बारे में भारत में अज्ञानता थी। शायद इसीलिए **रक़ाब** के लिए संस्कृत में कोई शब्द नहीं है। इसके स्थान पर शायद **कोतल कश** (surcingle), बड़े अंगूठे वाले **रक़ाब** (toe-stirrup) और निलम्बन काँटे (suspension hook) का भारत में प्रचलन था। परन्तु **रक़ाब** विशेष मुसलमानों की देन था। इस **रक़ाब**, को सर्वप्रथम 6वीं शताब्दी के आस-पास चीन में प्रयोग में लाया गया और बाद में वहाँ से यह अगली शताब्दी में फारस व अन्य इस्लामिक देशों में पहुंचा। इल्तुतमिश के शासनकाल में युद्ध कला पर संकलित एक फ़ारसी स्रोत में **रक़ाब** का उल्लेख मिलता है। (**रक़ाब** के सैनिक महत्व के लिए बॉक्स में लिखे परिच्छेद को देखें)।

युद्ध में घोड़े के उपयोग के इतिहास को तीन कालों में विभक्त किया गया है: पहला रथों में उपयोग, दूसरा चरण घुड़सवार योद्धा का है जो अपने घुटनों की शक्ति का उपयोग कर घुड़सवारी करता था, तीसरे चरण में घुड़सवार घुड़सवारी के लिए रक़ाब का उपयोग करने लगा। युद्ध में घोड़े पर बैठे घुड़सवार की स्थिति पैदल सैनिक से बेहतर होती थी। सेना में घोड़े के उपयोग की प्रत्येक बेहतर तकनीक को दूरगामी सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन से जोड़ा गया है।

जब रक़ाब का उपयोग नहीं होता था, तो घुड़सवार खूब जम कर नहीं बैठ पाता था और बराबर उसके गिरने की संभावना बनी रहती थी। लगाम और एड़ के बल पर वह घुड़सवारी करता था, साधारण काठी के सहारे वह घोड़े पर जमा रहता था, फिर भी युद्ध करने में उसे दिक्कत होती थी और वह अपनी युद्ध कला को विकसित नहीं कर सकता था। घोड़े पर चढ़कर वह तेजी से गतिशील मुद्रा में तीरंदाज़ी कर सकता था और भाले फेंक सकता था। तलवार का उपयोग सीमित था क्योंकि रक़ाब के अभाव में आपका ध्वंसकारी घुड़सवार अपने दुश्मनों पर तलवार भांज तो सकता था, पर अगर वार खाली हो गया तो वह स्वयं धराशायी हो सकता था। रक़ाब के चलन के पहले उसे भाला एक हाथ से संभाले रहना पड़ता था और कंधे और भुजा की शक्ति से उससे वार किया करता था। रक़ाब के उपयोग से आक्रमण का तरीका और अधिक कारगर हो गया। अब वह भाले पर अधिक नियंत्रण रख सकता था और इसे बाँह और अपने शरीर के बीच रखकर शत्रु पर वार कर सकता था। इसके लिए अब उसे केवल अपने बाहुबल का उपयोग नहीं करना पड़ता था, बल्कि इसके लिए वह अपनी समस्त शक्ति और घोड़े की पकड़ का भी उपयोग कर सकता था ।

रक़ाब से घुड़सवार को आगे-पीछे के अतिरिक्त बगल से भी सहारा मिलता था और वह काठी के अगले और पिछले हिस्से का उपयोग कर सकता था। इसके उपयोग से घोड़ा और घुड़सवार एक इकाई के रूप में हो गये और उनके आक्रमण में अपूर्व धार और तेजी आ गयी। अब योद्धा को घोड़े के संचालन में अपने हाथों को व्यस्त नहीं करना पड़ता था, अब उसे इशारा भर करना होता था। इस प्रकार रक़ाब के उपयोग से मानवीय ऊर्जा की बचत होने लगी और पशु की शक्ति का पूरा उपयोग होने लगा, इससे योद्धा की शत्रु पर मार करने की क्षमता में वृद्धि हुई। इसने आकस्मिक घुड़सवार आक्रमण की तकनीक को जन्म दिया, युद्ध कला के क्षेत्र में यह एक नया क्रांतिकारी परिवर्तन था।

11. लिन व्हाइट, मिडिवल टैक्नोलॉजी एण्ड सोशल चेंज, लंदन, 1973, पृ. 1-2 (हिन्दी अनुवाद)

22.6.2 नाल

मध्यकालीन भारत के कुछ विद्वानों ने **रक़ाब** को तुर्कों को मिली सैन्य सफलताओं के लिए एक सहयोगी कारक माना है। कम से कम उनके आक्रमणों की प्रारंभिक अवस्थाओं में **नाल** को इसके एक दुर्बल सहयोगी के रूप में लिया गया है।

घोड़े को पालतु बनाना ही पर्याप्त नहीं था। इसकी सवारी करने के उद्देश्य से इसे नियंत्रित करने हेतु कुछ यंत्रों की आवश्यकता पड़ती थी, जैसे साधारण लगाम, काँटेदार लगाम, हरना (आगे) और पिछले भाग (pommel and cantle) सहित **जीन** और **रक़ाब**।

लोहे की नाल का आगमन बाद में हुआ। यह विचित्र है कि घुड़सवारी के साज-सामानों में से नाल ही एक मात्र ऐसा सामान है जिसका अन्य की भांति घोड़े को नियंत्रित करने में प्रत्यक्ष रूप से कार्य नहीं होता है। यदि ऐसा है तो नाल लगाने की जरूरत क्यों? इसका कारण घोड़े के खुर हैं जो अश्वीय शरीर रचना का सर्वाधिक कोमल हिस्सा होता है। घोड़े का खुर लगातार बढ़ने वाला मानव नाखुनों के सदृश्य एक श्रृंगी संरचना होता है जिसके टूटने, छिलने और चिरने का खतरा बना रहता है। अपने मूल प्राकृतिक आवास में घोड़े के पैर और खुर स्वयं व्यवस्थित रहते थे अतः उनको काटने की आवश्यकता नहीं थी। परन्तु घरेलू और सधे हुए घोड़ों को उनको काम में लाते वक्त विशेष रूप से नम अक्षान्तरों में नाल चढ़ाई जाती थी। जख्मी पैर युक्त घोड़ा लंगडाएगा और उसके सवार के लिए किसी उपयोग का नहीं रहेगा। नाल लगाने के दो लाभ हैं: प्रथम इससे नरम जमीन पर पैर को अच्छी पकड़ प्राप्त होती है और द्वितीय खुरदरे कठोर धरातल पर खुर सुरक्षित रह सकते हैं। इस संदर्भ में घुड़सवारों की विश्व व्याप्त सूक्ति समझ आती है: "नाल नहीं घोड़ा नहीं"। अश्व सेना में एक पंगु घोड़ा, किसी घोड़े के न होने से ज्यादा बेकार माना जाता है।

भारत के किसी भी पुरातत्वीय उत्खनन में नाल का उल्लेख नहीं मिला है। अब यह एक निर्विवाद तथ्य है कि तुर्कों के भारत आने के साथ ही ये यहां आयातित हुए थे। **नाल** एक अरबी/फारसी शब्द है, इसे बनाने या लगाने वाले को **नालबंद** और नाल चढ़ाई को **नालबंदी** कहा जाता है। घोड़ों पर संस्कृत साहित्य (**सलिहोत्रा**) में नाल लगाने का उल्लेख नहीं मिलता है (**रक़ाब** और **चरखे** की भांति)। इसी कारण **नाल** लगाने के कार्य पर विगत में केवल मुसलमान कारीगरों का एकाधिकार था। कुछ भी हो, हमारे स्रोत केवल ठंडी नाल चढ़ाई की जानकारी देते हैं न कि यूरोप में प्रचलित गर्म-नाल चढ़ाई के बारे में।

22.6.3 बारूद और अग्नि-शस्त्र

कई दशकों पूर्व, कुछ विद्वानों, भारतीय व यूरोपीय दोनों, यह सिद्ध करना चाहते थे कि बारूद और अग्नि-शस्त्रों का प्राचीन भारत में प्रचलन था। संस्कृत स्रोतों में से **शुक्रनीति** को मुख्य रूप से उन्होंने अपने अध्ययन हेतु केन्द्र-विन्दु माना। तथापि अन्य विद्वानों ने उनके निष्कर्षों को, **शुक्रनीति** के सावधानीपूर्ण अध्ययन के बाद, ठुकरा दिया। पुनश्चः यह सिद्ध करने के असफल प्रयास हुए कि गज़नी शासक सुल्तान महमूद के आक्रमणों के बाद भारत आने वाले मुसलमान अग्नि-शस्त्रों का प्रयोग करते थे।

बारूद में शोरा, गंधक और चारकोल होता है, और इसका आविष्कार चीन में हुआ। कालान्तर में यह इस्लामिक देशों में पहुंच गया। बाहर से आए तुर्कों द्वारा बारूद, शायद 13वीं शताब्दी के अंत में या 14वीं शताब्दी के प्रारंभ में, भारत लाया गया। लेकिन यह बात ध्यान देने योग्य है कि सुल्तान फिरोज़शाह तुगलक के शासनकाल तक इसका उपयोग केवल आतिशबाजी के लिए होता था न कि अग्नि-शस्त्रों या तोप के गोले दागने हेतु। अग्नि-शस्त्रों का सर्वप्रथम उपयोग 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत के गुजरात, मालवा और दक्खन जैसे प्रदेशों में हुआ। किसी भी स्थिति में, नियमित आधार पर यूरोपीय अग्नि-शस्त्रों का प्रयोग पुर्तगालियों द्वारा किया गया जब वे 1498 ई. में कालीकट आये, और उत्तर भारत में प्रारंभिक 16वीं शताब्दी में बाबर द्वारा।

22.7 कलई

घरेलू तांबे (और पीतल) के बर्तनों में बासी खाद्य सामग्री रखने से अम्ल-विषाक्ता का खतरा रहता है। इसलिए उन पर टिन का एक आवरण, विशेष रूप से अन्दर की ओर, खाद्य-अम्ल की रासायनिक क्रिया से बचने के लिए, लगाया जाता है। यह कला भारत में तुर्कों के साथ आयी। इस तकनीक का प्राचीन भारत में कोई प्रमाण नहीं मिलता। साहित्यिक स्रोतों के अलावा, दक्षिण (कोल्हापुर के निकट) में उत्खनन क्षेत्रों से पुरातत्वीय प्रमाण मिलता है जहां एक, बाहर व भीतर दोनों ओर, कलई युक्त ताम्र पात्र प्राप्त हुआ है। परन्तु चूंकि, इस पात्र के साथ बहमनी साम्राज्य (1347-1538 ई.) के सिक्के भी प्राप्त हुए थे। यह उसी युग का माना जाना चाहिए।

कलई करने वाले **कलईगार** कहलाते थे। टिन (**रंगर**) एक अत्यंत आधातवर्ध्य और तन्य (malleable and ductile) धातु है, और धातु के बर्तनों पर इसकी कलई से उनको जंग व रासायनिक विषाक्तता से सुरक्षा मिलती है। **कलईगार** सर्वप्रथम बर्तनों से मिट्टी, इत्यादि हटा देता है। इसके बाद उन्हें एक छोटी भट्टी पर चारकोल की सहायता से गर्म किया जाता है। ताप की आवश्यक डिग्री को बनाए रखने के लिए छोटी धौंकनियों का प्रयोग किया जाता है। अगले चरण में रुई की सहायता से शुद्ध टिन और **नौसादर** के मिश्रण को लगाया जाता है। नौसादर का वाष्पीकरण हो जाता है और धातु का धरातल स्वच्छ निकल आता है। इसी दरम्यान टिन पिघलता है तथा रुई को निरंतर चारों ओर रगड़कर पूरे पात्र पर इसे फैला दिया जाता है—बाहर व अन्दर।

अबुल फज़ल **आइन-ए अकबरी** में कलई का उल्लेख करता है। उसके अनुसार शाही रसोई के ताम्र बर्तनों पर एक माह में दो बार कलई की जाती थी जबकि शहज़ादों व अन्य के लिए एक बार।

22.8 शीशा उत्पादन

भारत में शीशे का सर्वप्रथम प्रयोग ई.पू. प्रथम सहस्त्राब्दि में हुआ बताया जाता है। समाज में किसी वस्तु की उपस्थिति उसके संभावित प्रयोग का संकेत दे सकती है परन्तु आवश्यक नहीं कि वह इसकी तकनीक से भी परिचित हों। फिर भी भारत में शीशे की कमी नहीं थी : शायद आयातित शीशे के सामानों से लंबे संबंध ने स्वदेशी उत्पादन को जन्म दिया हो। परन्तु भारतीय काँच-सामग्री मनकों और चूड़ियों के निर्माण तक सीमित रही। मुसलमानों के आगमन के बाद इस्लामिक देशों से दवाईयों की शीशियों, जार और पात्र भारत आने लगे। यह निर्धारण करना संभव नहीं है कि क्या वे शीशे के सामान वास्तव में दिल्ली सल्तनत के काल में इनके आयातित रूपों की नकल पर बनाए गये थे। फिर भी, हमारे अध्ययन काल में चश्में के लिए लेन्स या दर्पण जैसी काँच से बनी वस्तुएँ प्राप्त नहीं होतीं (दर्पण तांबे या कांसे के बने होते थे जिनके धरातल चमकीले होते थे।

22.9 जहाज़ निर्माण

नावों और जहाजों के सम्पूर्ण फ्रेम समस्त विश्व की भांति लकड़ी के बनते थे। पहले तख्तों को खाँचों द्वारा (rabetting or tongue-and-groove method) जोड़ा जाता था। फिर उन्हें नारियल के छिलकों से बने रस्सों द्वारा सी दिया जाता था। कभी-कभी लकड़ी की कीलों का भी प्रयोग होता था। लोहे की कीलों और सन्धरों (clamps) का उपयोग तख्तों को जोड़ने में 1498 ई. के बाद यूरोपीय जहाज़ निर्माण के प्रभाव में किया जाने लगा। लंगर पत्थरों से निर्मित होते थे, बाद में, यूरोपवासियों द्वारा लोहे के बने लंगर प्रचलित किए गए।
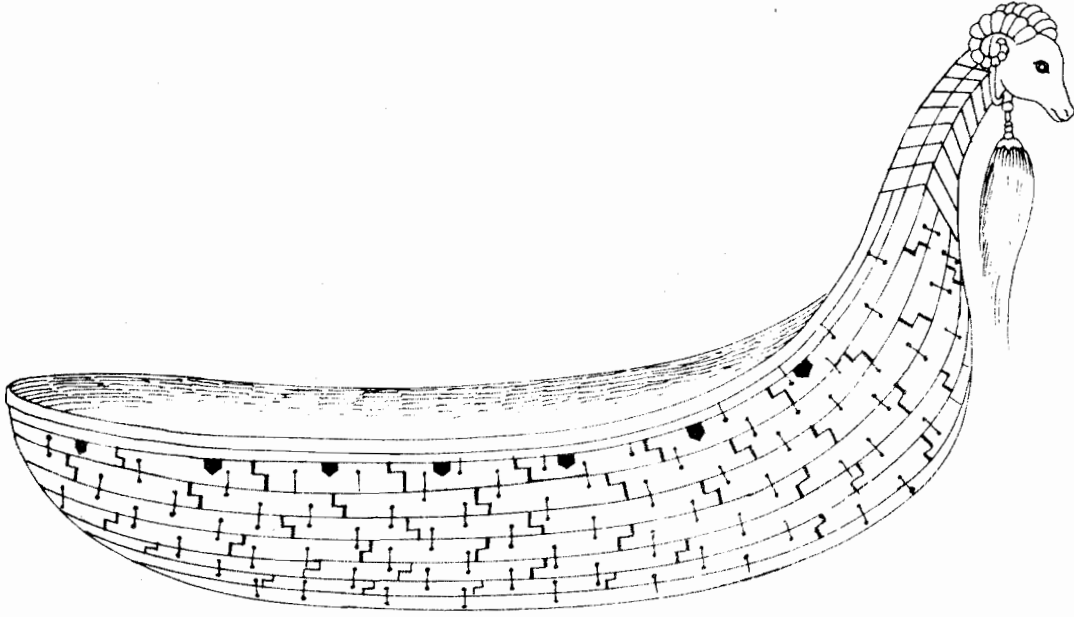
11. रैबेटिंग और तख्तों को जोड़ने के लिए लोहे की कीलो का प्रयोग

समुद्र-यात्राओं के लिए मुसलमानों द्वारा भारत में चुम्बकीय दिशासूचक (कुतुबनुमा) का उपयोग एक महत्वपूर्ण योगदान था।

22.10 आसवन

ऐसा कोई समाज नहीं हुआ जिसने मादक पेय पदार्थों का निर्माण न किया हो। वैदिक युग में **सोम** ऐसा ही एक मादक पेय था। मदिरा प्राप्त करने की दो विधियां हैं: किण्वन और आसवन। प्रथम विधि सम्पूर्ण विश्व में सुज्ञात थी। मदिरा चावल, गन्ने के रस, महुआ के फूलों के किण्वन (fermentation) द्वारा प्राप्त की जाती थी।
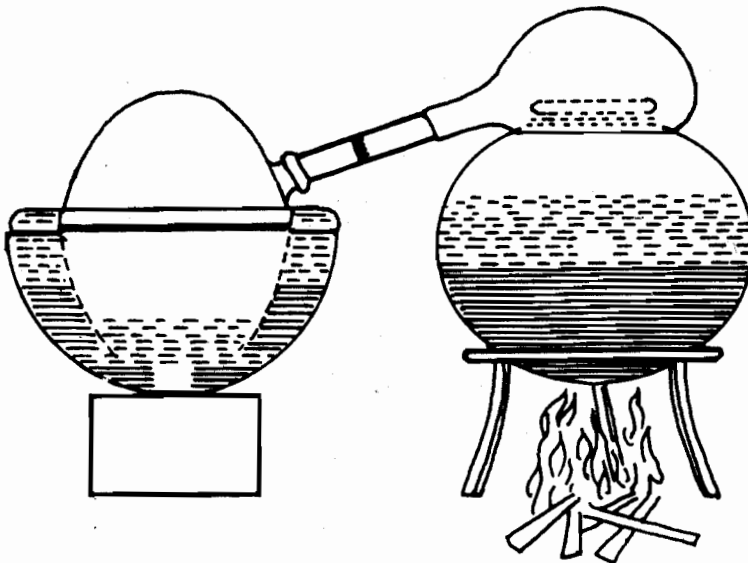
12. आसवन-यन्त्र का निर्माण (मार्शल, 1953)

आसवन (distillation) विधि बाद में प्रचलित हुई। यह कहा जाता है कि सर्वप्रथम इसकी खोज ई. 12वीं शताब्दी में इटली में हुई। भारत के संदर्भ में एक राय यह है कि आसवन तुर्कों की देन है। यह मत स्वीकार्य नहीं है। हाल ही के वर्षों में पाकिस्तान के सिरकप (तक्षशिला) और शैखान की ढ़ेरी में उत्खनन के दौरान आसवन के संयंत्र जैसे संपूर्ण संक्षेपण पात्र और भभका के कुछ भाग प्राप्त हुए हैं जो तक्षशिला के संग्रहालय में सुरक्षित है। यह संयंत्र दूसरी शताब्दी ई.पू. से दूसरी शताब्दी ई.के मध्य का है, तुर्कों के भारत आने से बहुत पूर्व। तुर्कों का योगदान इसे पूर्व की तरफ प्रचलित करने का है।

बोध प्रश्न 4

1) निम्नलिखित को परिभाषित कीजिए

   अ) **रक़ाब**

   ....

   ....

   ....

   ब) **नाल**

   ....

   ....

   ....

2) खाली स्थानों को पूरा कीजिए

   अ) बारूद का आविष्कार .... में हुआ।

   ब) भारत में अग्नि-शस्त्रों का प्रयोग सर्वप्रथम .... के काल में हुआ।

   स) भारत में कलई की विधि .... द्वारा प्रसारित की गई।

   द) तख्तों को जोड़ने के लिए .... विधि अपनाई गई।

   य) आसवन विधि का सर्वप्रथम आविष्कार .... में हुआ।

22.11 सारांश

इस इकाई द्वारा आपको उन तकनीकों या विधियों का ज्ञान हुआ होगा जिनसे सल्तनत कालीन लोग अपनी रोज़मर्रा की वस्तुओं का निर्माण या उत्पादन करते थे। कृषि के संदर्भ में अब आप लोहे के फाल युक्त हलों, बोआई की प्रणालियों, सिंचाई-साधनों, फसल-कटाई, गुहाई और ओसाई से परिचित हैं। वस्त्र उद्योग के अंतर्गत आप ओटाई, धुनाई, कताई, बुनाई, रंगाई और छपाई संबंधी अध्ययन कर चुके हैं। भवन निर्माण के संदर्भ में चूना-गारा, वैज्ञानिक तरीके से बनाई गई मेहराबों और गुंबद, मेहराबी छतें अधिक महत्वपूर्ण हैं। कागज निर्माण और जिल्दसाज़ी नयी कलायें थी। यही स्थिति **रक़ाब, नाल** और बारूद के संदर्भ में सैन्य तकनीकी की थी। **कलईगिरी** भी एक नया उद्यम था। काँच उत्पादन इस काल में निम्न-स्तरीय था। पुर्तगालियों के आने से पूर्व तक पोत निर्माण में लोहे का प्रयोग नहीं होता था। मादक द्रव्यों के उत्पादन के लिए किण्वन और आसवन प्रणाली अपनाई जाती थी।

अंत में मुसलमानों द्वारा भारत में लाई गई नई विधियों और उद्यमों को संक्षेप में दोहराए: **साक़िया,** चरखा, करघा (पैरों द्वारा संचालित), चूना-गारा, **मेहराब, गुंबद**, कागज और जिल्दसाज़ी, **रक़ाब, नाल,** बारूद, कलई और नाविक के लिए कुतुबनुमा। भारतीयों ने इन सभी को बिना किसी झिझक या विरोध के स्वीकार किया।

22.12 शब्दावली

फिटकरी : सफेद खनिज लवण जो रंगाई में उपयोगी होता है।

मेहराब : वक्राकार संरचना

डाट-पत्थर : वे पत्थर अथवा ईंटें जो मेहराब बनाने में प्रयुक्त होते हैं, मुख्य-पत्थर (key stone) के अतिरिक्त।

कदलिकाकृत : वह विधि जिसके द्वारा छत बनाने के लिए पत्थर के कोनों को अन्दर की तरफ निकाल कर, पत्थरों को एक के ऊपर एक रखकर खाली स्थान को भरा जाता है (देखें खंड 8 इकाई 31)।

फरमान : सुल्तान का आदेश

गियर : दांतनुमा चक्रों का एक समूह जो दूसरे ऐसे ही समूह में फिट होकर शक्ति संचालन करता है।

निमज्जन : पानी के धरातल के नीचे किसी वस्तु को रखना

लूम (करघा) : वस्त्र बुनाई का यंत्र

धरणिक : वह विधि जिसमें छत को बड़े पत्थर या धरनी (beam) द्वारा ढका जाता है (देखें खंड 8 इकाई 31)।

ट्रेडिल-लूम : पैरों द्वारा चलने वाले लूम (करघे)

बुझा-चूना : कैल्शियम हाइड्रॉक्साइड $CO(OH)_2$: यह कैल्शियम ऑक्साइड पर जल की क्रिया द्वारा तैयार होता है।

अनबुझा चूना : कैल्शियम ऑक्साइड (CaO) जो कैल्शियम कार्बोनेट (चूना) को गर्म करके प्राप्त किया जाता है।

22.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें उप-भाग 22.2.4
2) देखें उप-भाग 22.2.4
3) (i) × (ii) √ (iii) √ (iv) ×

बोध प्रश्न 2

1) देखें उप-भाग 22.3.1
2) देखें उप-भाग 22.3.1
3) देखें उप-भाग 22.3.2

बोध प्रश्न 3

1) देखें उप-भाग 22.4.1, 22.4.2
2) देखें भाग 22.5

बोध प्रश्न 4

1) देखें उप-भाग 22.6.1, 22.6.2
2) अ) चीन ब) 15वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध
   स) तुर्की द) खांचों द्वारा तख्तों को जाड़ने की विधि द्वारा
   य) दूसरी शताब्दी ई. पूर्व से दूसरी शताब्दी ई. के मध्य

परिशिष्ट*

14वीं सदी के कुछ उद्धरण

14वीं सदी की कृषि व्यवस्था के सन्दर्भ में जो कुछ महत्वपूर्ण उद्धरण हैं उनका समझना कठिन है। जहां कहीं उनके अनुवाद उपलब्ध हैं वे पूर्णतया ठीक नहीं है। नीचे दिये गये उद्धरण शाब्दिक अनुवाद हैं, जहां कहीं कोई संदेह व परिवर्तन आता है उसे कोष्ठक में दिया गया है तकनीकी शब्दों की व्याख्या अनुवाद के वाद टिप्पणी में कर दी गई है। वाक्यांश व उपवाक्यों को चिन्हांकित कर दिया गया है और कोष्ठक में नम्बर लिख दिया है ताकि प्रासंगिकता इत्यादि में कोई समस्या नहीं हो।

I) अलाउद्दीन के राजस्व फरमान

(बर्नी, पृ. 287. अंग्रेजी अनुवाद, इलियट, III, पृ. 182 और जे.ए.एस.बी. (जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, भाग 39 पृ. 382, अन्तिम भाग ब्लॉकमैन के नोट के साथ)

1) सुल्तान अलाउद्दीन ने विद्वानों से नियमों के विषय में सलाह मशविरा किया ताकि हिन्दुओं (1) का दमन किया जा सके,
2) और उनके घरों में धन और सम्पत्ति नहीं रहना चाहिए क्योंकि यह असंतोष और विद्रोह का सबसे बड़ा कारण है;
3) और करों की अदायगी के लिए राजा से रंक तक सब के लिए समान नियम होने चाहिए (2),
4) और कर की जो माँग समाज के धनी लोगों से की जाती है उसे निर्बल को नहीं भुगतना चाहिए,
5) हिन्दू (1) के पास सुख सुविधा के इतने साधन नहीं होने चाहिए जिससे वे घोड़े की पीठ पर सवार होकर हाथ में हथियार लेकर एवं सज-धज कर निकल सके तथा आनन्द उठा सकें,
6) उपर्युक्त लक्ष्य की प्राप्ति हेतु दो नियम (3) बनाये जा सकते हैं। यह सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकता है।
7) प्रथम (नियम)—जो कृषि कार्य में संलग्न हैं, चाहे छोटे या बड़े हों, वे भूमि की माप और प्रति बिस्वा उपज के आधार पर (4) खेती करें,
8) और बिना किसी रियायत के आधा हिस्सा कर के रूप में दें;
9) इस भुगतान के समय राजा व रंक (2) के बीच कोई भेद-भाव नहीं किया जाना चाहिए;
10) राजस्व के प्रमुख संग्रहणकर्ता के विशेष अधिकारों (5) के नाम पर एक रत्ती भी नहीं छोड़ा जा सकता।

(यह विवरण आगे दूसरे नियम की बात करता है, जो चरागाह पर कर लागू करने के विषय में है।)

टिप्पणियाँ

1) "हिन्दू" : जैसा कि अध्याय 11 में बताया गया बर्नी इस शब्द का संकीर्ण अर्थों में प्रयोग करता है, इस शब्द के माध्यम से वह उस वर्ग को सम्बोधित करता है जो सामान्य कृषकों के ऊपर हैं। अतः इस संदर्भ में वास्तव में यह सरदार तथा ग्राम प्रमुख का पर्याय है।
2) "राजा से लेकर रंक तक" **अज़ खोत व बलाहार, बलाहार** फारसी शब्द नहीं है। ब्लॉकमैन ने सामान्य अर्थ में निम्न प्रकार के कामों में लगे ग्रामीण मजदूरों के लिए इस शब्द का प्रयोग किया है। इसे इस अर्थ में लेना ही सुविधाजनक है। ऊपरी दोआब के क्षेत्र में, जहां का बर्नी रहने वाले था, **बलाहार** शब्द का प्रयोग झाड़ू लगाने वाले लोगों के लिए किया जाता था। अतः लेखक के मस्तिष्क में बलाहार ग्रामीण जीवन में सबसे नीचा काम करने वाला रहा होगा। इसके लिए उपयुक्त अंग्रेजी शब्द नहीं है।

बर्नी ने जिस शब्द **"खोत"** का प्रयोग बार-बार किया है, वह इस काल के साहित्य में और कहीं नहीं मिलता। बर्नी ने **खोत** तथा **खूता** शब्द का प्रयोग बार-बार किया है और इनमें अन्तर करना मुश्किल है। **बलाहार** शब्द के विपरीत **खोत** व **खूता** शब्दों का प्रयोग ग्रामीण उच्च एवं कुलीन वर्गों के लिए किया जाता है। **खोत** का प्रयोग अधिकतर ग्राम प्रधान या **मुकद्दम** के साथ क्रिया गया है (288, 291, 324, 430, 479, 554)। जबकि दो उद्धरणों में (288) इस का संबंध **चौधरी** अथवा **परगने** के प्रमुख और **मुकद्दम** दोनों के साथ जोड़ा गया है तथा इसके विशेष अधिकार लगभग वही थे जो **मुकद्दम** के थे (430)।

* यह परिशिष्ट डब्लू.एच. मोरलैण्ड की पुस्तक, **एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया** के परिशिष्ट 'सी' का हिन्दी अनुवाद है।

बर्नी अपनी पुस्तक के लगभग अन्त तक (539, 589) स्थानीय सरदारों (जो राजा के अधीन थे) के लिए **जमींदार** शब्द का प्रयोग नहीं करता तथा कृषि और राजस्व व्यवस्था संबंधी उसके विवरण में भी इसकी चर्चा नहीं होती। जहां कहीं हम **जमींदार** शब्द के प्रयोग की आशा करते हैं वहां **खोत** शब्द का प्रयोग मिलता है। इसकी तर्क संगत व्याख्या यही हो सकती है कि **जमींदार** उसके काल में ही अस्तित्व में आया और धीरे-धीरे **खोत** का स्थान ले रहा था। अतः ये दोनों ही वास्तव में समान अर्थ वाले शब्द हैं। जहाँ कहीं **खोत** शब्द का प्रयोग हुआ है उस स्थान पर अगर हम **जमींदार** पढ़ें तो अर्थ तर्कसंगत और उचित प्रतीत होता है। अगर ये समानार्थ शब्द नहीं हैं तब हमें यह मान लेना चाहिए कि बर्नी के काल का यह महत्वपूर्ण वर्ग **खोत** अगले लेखक के काल तक पूर्णतया समाप्त हो गया था। साथ ही उतने ही महत्व का **जमींदार** वर्ग रहस्यमय ढंग से अस्तित्व में आ गया, यह परिकल्पना जितनी अतार्किक है उतनी ही अनावश्यक।

खोत शब्द की पहचान संदिग्ध हैं। ब्लॉकमैन ने उसे अरबी का एक दुर्लभ शब्द बताया। स्टेनगास ने उस शब्द का प्रयोग "लचीली टहनी", या मोटे किन्तु खूबसूरत एवं सक्रिय आदमी के संदर्भ में किया। लेकिन इससे यह कतई पता नहीं चलता कि **खोत** एक ग्राम प्रमुख को कैसे इंगित करता है। जो पांडुलिपि मैंने देखी उसमें कोई व्यंजन नहीं है और यह संभव है कि इसका उच्चरण भिन्न था। हम एक ऐसे शब्द का विश्लेषण कर रहे हैं जिसकी उत्पत्ति स्वतंत्र रूप से भारत में हुई। इस शब्द का जो भी अर्थ हो बर्नी ने इसे निश्चित रूप से प्रमुख के अर्थ में प्रयोग किया है। बलॉकमैन सही विश्लेषण करके इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि इस शब्द का तात्पर्य ग्रामीण समाज के सर्वोच्च वर्ग से है, लेकिन ज़मीन के मालिक एवं ज़मीन जोतने वाले के संदर्भ में उसके द्वारा प्रयोग ऐतिहासिक दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है।

ऐसा भी कहा जाता है कि उत्पत्ति की दृष्टि से यह शब्द भारतीय है जिसकी उत्पत्ति "मराठी" के **खौत** शब्द से हुई। यह शब्द कोंकन भाषा में आम तौर पर प्रयोग किया जाता है। लेकिन बर्नी द्वारा इस शब्द को अरबी भाषा के अक्षरों **खे** और **ते** से लिया जाना इस शब्द की किसी संस्कृतजनित भाषा से उत्पत्ति असंभव सी प्रतीत होती है। 16वीं सदी के बीजापुर राज्य में **खोत** शब्द के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती। इसकी यह संभावित व्याख्या दी जा सकती है कि दक्खन पर अलाउद्दीन की विजय के बाद अरबी शब्द **खोत** प्राकृतिक रूप से **खौत** के रूप में अपना लिया गया। **खोत** शब्द मुगल विजय से पहले गुजरात में भी प्रचलित था जैसा कि प्रो होदीवाला की पुस्तक **स्टडीज़ इन पारसी हिस्ट्री** के पृ. नं. 204 में बताया गया है। परन्तु उसकी व्याख्या नहीं की गई है। यह संभव है कि यह अरबी शब्द उत्तर में प्रयोग में नहीं रहा और कोंकण भाषी गुजरात में भारतीय स्वरूप में प्रचलित रहा लेकिन इस विषय में अधिक लिखित प्रमाणों की आवश्यकता है।

3) यह उद्धरण व्याकरण की दृष्टि से पूर्णरूपेण शुद्ध नहीं कहा जा सकता। **आवरदन** को **आवरदन्द** पढ़ना आसान है और उद्धरण 5 के अन्त में पूर्ण विराम देना चाहिए। इस स्थिति में इसका अनुवाद होगा: "उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति हेतु दो नियम बनाये गये" जिससे व्याकरण तथा अर्थ स्पष्ट होता है।

4) "माप के नियम और प्रति विस्वा उपज" **हुक्म ए मसाहत व वफा-ए बिस्वा।**

बर्नी दो प्रकार के हुक्म या भूमि की माप के नियमों का उल्लेख करता है—**मसाहत** और **हासिल** अर्थात् "माप" और "पैदावार"। लेकिन आगे के उद्धरण में **मसाहत** फसल के नुकसान से संबंधित रियायत है जिसकी **हासिल** में कोई जरूरत नहीं थी। अगर हम इन दो शब्दों को विधि के अर्थ में न देखें तो हम अवश्य ही उन अर्थों में देखेंगे जिसे हमने माप और हिस्सेदारी के संदर्भ में प्रयोग किया है। जिससे उस काल के हिन्दू तथा मुसलमान दोनों परिचित थे और यह 16वीं सदी से 19वीं सदी तक किसी न किसी रूप में प्रचलित रहे हैं। मुगल काल के कागजात में **मसाहत** के लिए **जरीब** अथवा पैमाइश शब्द का प्रयोग होता है लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि स्थानीय स्तर पर इसका प्रयोग जारी रहा। 1832 तक माप के क्रियाकलाप में संलग्न स्थानीय कर्मचारियों को **"मसाहत"** विभाग के नाम से जाना जाता था (Rev. Sel ii, पृ. 378)। **हासिल** का प्रयोग उपज की हिस्सेदारी के अर्थ में किया जाता है और मुझे इसका कोई दूसरा संदर्भ नहीं लगता है।

"वफा-ए बिस्वा" मुहावरे का प्रयोग बर्नी के अलावा दूसरी जगहों पर नहीं मिलता और वह भी इसका प्रयोग माप शब्द के बाद इसे दुहराने के लिए करता है। यह क्षेत्रफल की एक इकाई है। एक **बिस्वा** का अर्थ है 1/20 **बीघा**। बर्नी के बाद के दो इतिहासकारों के अनुसार **वफा** का तकनीकी अर्थ "फसलों की उपज" है और यहाँ भी शायद इसका अर्थ यही है। इसलिए "बिस्वा उपज" से यह पता चलता है कि बोए गये क्षेत्र से नियमित उपज की दर क्या है। माप की पद्धति का यह महत्वपूर्ण अंग है। **तारीख-ए मुबारक शाही,** ओरिऐन्टल 5318, पृ. 34 एक अनुच्छेद जहाँ दोआब में मौहम्मद तुगलक के शासनकाल में शोषण व दमन का विवरण मिलता है, में **किश्त-हा मी-पैमीदन्द व वफा-हा फरमानी मी-बस्तंद** पढ़ने को मिलता है अर्थात् "वे खेतों को मापते थे तथा नियमानुसार उपज निर्धारित करते थे"। यहाँ **वफा** शब्द का प्रयोग किसी दूसरे अर्थ में नहीं किया जा सकता है। यही अर्थ अफीफ (पृ. 180) के संदर्भ में भी लिखा जा सकता है। जहाँ यह शब्द दो बार प्रयोग किया गया है। इन उदाहरणों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि बर्नी भी इसी अर्थ से परिचित था। मुझे मुगल काल में इस शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है संभवतः इस समय यह प्रयोग में नहीं था।

5) "प्रमुखों के प्राधिकार" **हकूक-ए खोतान**। जैसा कि उद्धरण से पता चलता है कि राज्य के कार्य करने के बदले में इन प्रमुखों से खेतों की भूमि के एक भाग से राजस्व की वसूली नहीं की जाती थी। लेकिन गियासुद्दीन का विचार था कि **खोतों** को इस छूट से ही संतुष्ट रहना चाहिए। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह राजस्व मुक्त

राशि काफी रही होगी। लेकिन इस प्रकार की कितनी भूमि रखने की आज्ञा थी यह स्पष्ट नहीं है। इसी अनुच्छेद में लिखा है कि प्रधान किसानों से स्वयं अपने प्रयोग के लिए भी धन की वसूली करते थे। शायद नियम (4) का तात्पर्य भी यही है कि किसानों को वह राजस्व भी चुकाना पड़ता था जो वास्तव में प्रमुखों को या ग्राम प्रधानों को देना चाहिए।

II) **गियासुद्दीन की कृषि नीति**

(बर्नी, 429, ऑरिऐन्टल 2039 अनुवाद, **जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल**, खंड 40, पृ. 229, इलियट का अनुबाद, खंड III, पृ. 230, अपूर्ण है।)

मैने श्री आर. पेजेट से प्रार्थना की कि वे इस जटिल अनुच्छेद का अनुवाद कर दें। उन्होंने उदारतापूर्वक निम्नलिखित अनुवाद किया उनकी टिप्पणियों को भी "D" से चिन्हांकित किया है। शेष टिप्पणियाँ मेरी स्वयं की हैं।

1) उसने राज्य के राजस्व को समानता से ''उत्पाद के नियम'' के आधार पर निर्धारित किया (1),
2) राज्य के नये तरीकों तथा फसल के नुकसान होने पर किसानों को राहत देने के लिए सही आंकलन किया गया (2);
3) राज्य के प्रान्तों और देहातों में खुफिया विभाग की सूचनाओं, कर वृद्धि के समर्थकों तथा ठेके पर कर वसूलने वालों के विचारों के आधार पर राजस्व (3) नहीं बढ़ाया गया।
4) उसने **फरमान** जारी किया कि जासूस, क्रूर-वृद्धि के समर्थक, करों के ठेकेदार तथा भूमि बर्बाद करने वालों को राजस्व विभाग के आस-पास न रहने दिया जाये,
5) और उसने राजस्व मंत्रालय को यह भी हिदायत दी कि प्रांतों और गांवों में अनुमान, जासूसों की रिपोर्ट तथा कर वृद्धि के समर्थकों की इच्छानुसार राजस्व में 1/10 या 1/11से अधिक की बढ़ोत्तरी नहीं की जानी चाहिए,
6) और इस बात के लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए कि कृषि में बढ़ोत्तरी हो तथा राजस्व में वृद्धि भी धीरे-धीरे की जाय,
7) और वृद्धि इस तरह नहीं की जानी चाहिए कि एक साथ राजस्व इतना बढ़ा दें कि पूरे देश की बर्बादी हो जाय और दुबारा फिर राजस्व न बढ़ाया जा सके।
8) सुल्तान तुगलक शाह ने इस बात पर बल दिया कि किसानों से राजस्व की वसूली इस तरह की जाय जिससे आगे कृषि का विकास भी संभव हो,
9) और कृषि सुव्यवस्थित हो तथा प्रति वर्ष राजस्व में थोड़ी वृद्धि हो।
10) सुल्तान कहा करता था कि तुम्हें एक बार इतना कर नहीं ले लेना चाहिए जिससे कृषि भी व्यवस्थित न रह सके और भविष्य में विस्तार भी असंभव हो जाए।
11) किसी भी राज्य की बर्बादी का प्रमुख कारण शोषण एवं दमन पर आधारित राजस्व की वसूली और बहुत अधिक राजकीय मांग है।
12) बर्बादी की शुरुआत **मुक्ती** तथा अधिकारियों के विनाशकारी कार्यकलापों से होती है।
13) राजस्व की वसूली के विषय में सुल्तान तुगलक शाह सभी **मुक्तिओं**, राज्यपालों एवं अधिकारियों को आदेश दिया करता था,
14) हिन्दुओं को इस स्थिति में रखना चाहिए कि वह वैभव के कारण अंधे होकर विद्रोही न हो जाय,
15) और वह गरीबी से इतना मजबूर न हो जाय कि कृषि कार्य छोड़ दे।
16) राजस्व की वसूली कुशल राजनीतिज्ञों तथा विशेषज्ञों द्वारा बताए गए नियमों के अनुसार की जानी चाहिए,
17) और हिन्दुओं (4) के विषय में कूटनीतिक कुशलता यही है कि उपरोक्त नियम का पालन किया जाए
18) राजस्व वसूली के संदर्भ में सुल्तान गियासुद्दीन तुगलक का, जो एक अनुभवी, दूरदृष्टि वाला व्यक्ति था महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है,
19) उसने **मुक्तिओं** तथा राज्यपालों से अनुरोध किया कि राजस्व वसूली में छानबीन एवं निरन्तरता **बनाये** रखना चाहिए,
20) ताकि प्रमुख तथा ग्राम प्रधान राज्य द्वारा निर्धारित कर के अतिरिक्त अलग से किसानों पर राजस्व **का** भार नहीं डाल सकें;
21) और प्रमुख तथा ग्राम प्रधान होने के नाते उनकी अपनी कृषि भूमि एवं चरागाह कर मुक्त थे। इसी से उन्हें संतुष्ट रहना चाहिए और किसानों पर अलग से राजस्व को आरोपित नहीं किया जाना चाहिए।
22) इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि प्रमुखों तथा ग्राम प्रधानों पर अधिक उत्तरदायित्व है। अगर वे अन्य किसानों की तरह राजस्व का भुगतान करेंगे तो प्रमुख या ग्राम-प्रमुख रहने में जो विशेषता है वह समाप्त हो जाएगी।
23) उन **अमीरों** और **मलिकों** (5) को जिन्हें गियासुद्दीन ने बढ़ावा दिया और प्रांत तथा **इक्ते** प्रदान किए,

24) उनके विषय में उसने इस बात की इजाजत नही दी कि उन्हे आम कर्मचारियो (6) की भाँति राजस्व मंत्रालय के पास लाया जाय और उनसे दुर्व्यवहार हों और सख्ती से राजस्व की बसूली की जाय.
25) किंतु उसने उन्हें यह अवश्य निर्देश दिया कि,
26) "यदि आप राजस्व मंत्रालय में बुलाए जाने के अपमान से बचना चाहते हैं, तथा यह चाहते हैं कि आप के साथ सख्ती और दुर्व्यवहार न हो,
27) और यदि आप **मलिक** और **अमीर** के अपने पद को अपमान से बचाना चाहते हैं,
28) तो अपने **इक्ता** में उचित मांग करें,
29) **इक्ता** की इस उचित रकम में से अपने कर्मचारियों को भी दे,
30) और सैनिकों को दी जाने वाली रकम में से किसी प्रकार की कोई चोरी नहीं होनी चाहिए।
31) आप अपने स्वयं के राजस्व में से सैनिकों को कुछ दें या न दें वह आपकी इच्छा पर निर्भर करता है
32) लेकिन अगर आप सैनिकों के राजस्व से कुछ भी लेना चाहते हैं तो,
33) आपके लिए **अमीर** और **मलिक** शब्द का प्रयोग भी अपमानजनक होगा,
34) और जो **अमीर** सैनिक के वेतन से कुछ भी लेता है, उसके लिए अच्छा हो कि धूल खा ले।
35) लेकिन **मलिक** और **अमीर** अगर अपने **इक्ता** व प्रांतों से 5/10 या 5/11 और 1/10 या 1/15 भाग राजस्व का चाहता है,
36) और **इक्ता** धारक और गवर्नर की विशेष सुविधाओं का भी उपयोग करता है,
37) तो उसे रोका नहीं जा सकता है और इसे वापस मांगना या **अमीर** पर दबाव डालना निन्दनीय है।
38) इसी प्रकार यदि प्रांतों में उनके प्रतिनिधि या अधीनस्थ (7) अपने वेतन के अलावा 1/2% या 1% और ले लेता है तो,
39) इस रकम के लिए उन्हें अपमानित नहीं किया जाना चाहिए तथा उन्हें मार पीट कर जेल में डाल कर या दंडित करके वापस नहीं मांगना चाहिए।
40) लेकिन अगर वह मोटी रकम (8) ले लेता है और राज्य के राजस्व में से इसकी छूट प्रदान करता है या प्रांतों और गांवों से बड़ी रकम आपस में बांट कर ले लेता है,
41) ऐसे गद्दार चोर को अपमानित कर, पीट कर, या जंजीरों में बंदी बनाना चाहिए और उनसे उस धन को वापस ले लेना चाहिए।"

ग्रंथ पर टिप्पणी

3) "ठेके" ग्रंथ में **पज़ रफ्तनिहा** निश्चित रूप से एक गलती है इसका सही रूप **पज़ इरुफ्तनिहा** (D) है।
4) "भूमि को बर्बाद करने वाला" को **मुहाज़्ज़िबान** के लिए **मुखर्रिबान**। ओरिएन्टल 2039 में ऐसा पढ़ा जा सकता है।
7) "इस तरह नहीं" इसमें ता की जगह ना है जैसे ओरिएन्टल 2039 में।
26) "अगर आपकी इच्छा है" में **ख्वाहद** की जगह **ख्वाहेद** हो सकता है जिसे ओरिएन्टल 2039 में उद्धत किया गया है।
26) "सामने नहीं आना चाहिए" जिसमें **बायुफ्तद** के लिए **नायुफ्तद** हो सकता है, ओरिएन्टल 2039।
38) "ले लेना चाहिए" **इसायत** की जगह **इसाबत** पढ़े जैसे, ओरिएन्टल 2039 ।

टिप्पणियाँ

1) "उत्पाद के नियम", **हुक्म ए हासिल**। पिछले उद्धरण में नोट 3 को देखें।
2) "फसल का नुकसान", **बूद व नाबूद-हा** इस मुहावरे का तकनीकी अर्थ अकबर के कर निर्धारण नियम से हुआ। जिसका शाब्दिक अर्थ है "अस्तित्व और बिना अस्तित्व के"। (**आईन,** I, 288) जिसमें लिपिक से कहा जाता है कि **बूद** का रेकार्ड तैयार करे तथा **नाबूद** को उसमें से घटा दें अर्थात् नापी हुई भूमि में से ऐसे क्षेत्र को हटा दें जहाँ फसल बर्बाद हो गई हो। शायद **किस्मत** शब्द का प्रयोग ऐसे क्षेत्र के लिए है जो बर्बाद हुए क्षेत्र के वर्गीकरण के लिए किया जाता है। **नाबूद** शब्द 19वीं सदी तक ऐसे विस्तृत अर्थ में प्रयोग किया जाता था जिसका प्रयोग कुल अनुमानित राजस्व में दी गई छूट के लिए होता था।
3) "राजस्व को बढ़ाने की बात करने वाले", **मुवाफिरान**। यह शब्द किसी भी शब्दकोष में नहीं है इसका तकनीकी अर्थ **तौफीर** या ज़मीन से होने वाले किसी प्रकार के लाभ के संदर्भ में लिया जा सकता है। बाद के उद्धरण (574) में, बर्नी, **तौफीर नुमायान** का प्रयोग गुप्त लाभ की जानकारी देने वाले के लिए करता है। ये कार्यालय में प्रयोग होने वाला शब्द था और श्री ड्यूहर्स्ट ने राजस्व बढ़ाने की बात करने वालों के अर्थ में प्रयोग किया जिसे मैंने लगभग इसी अर्थ में लिया।
4) "हिन्दू" का भी वही संकीर्ण अर्थ है जो पहले के उद्धरणों में लिया गया है।
5) **"अमीर** और **मलिक"**, इस समय कुलीनों के लिए तीन प्रमुख पद-नाम प्रयोग होते थे **खान, अमीर,** तथा

मलिक। यहां इन्हें अभिजात वर्ग के लिए प्रयोग किया गया है।

6) ''पदाधिकारी'', **आमिलान, उम्माल**। इस समय तक **आमिल** शब्द किसी विशिष्ट व निश्चित पद के लिए प्रयोग नहीं किया जाता था बल्कि कार्यपालिका संबंधी किसी भी अधिकारी के संदर्भ में किया जाता था।

7) ''एजेन्टस एवं नायब'' **कारकूनान व मुतसर्रिफान। कारकुन** का शाब्दिक अर्थ एजेंट है। इसमें मुझे यह स्पष्ट नहीं है कि अब तक यह लिपिक के अर्थ में प्रयोग होता था या नहीं जो कि 16वीं शताब्दी में निश्चित रूप से था। कुछ उद्धरणों को इस रूप में पढ़ा जा सकता है परन्तु अन्य के विषय में संदेह है। शायद पदों का विशिष्टीकरण हो रहा था परन्तु पूरी तरह नहीं हो पाया था। मुझे अभी तक ऐसा कोई उद्धरण नहीं मिला है जो यह बता सके कि **मुतसर्रिफ** किसी खास पद की बात करता है बल्कि इस शब्द का प्रयोग स्थानीय नौकरशाही के संदर्भ में किया जाता है। इसका अर्थ अधीनस्थ अधिकारी के लिए सामान्य रूप में लिया जा सकता है या अधीनस्थ अधिकारियों के किसी वर्ग की बात करता है।

8) ''एक काफी रकम'', **मुआतदुद - हा**। मैं इसे एक अच्छी खास रकम के अर्थ में लेता हूँ। शाब्दिक अर्थ में, जिसे गिना जा सके अर्थात् जो गिनने योग्य हो (D)।

इक्ता और **मुक्ती**, जिन्हें अनुवाद में इसी रूप में लिखा गया है, के विषय में परिशिष्ट 'बी' में व्याख्या की गई है। इनके इस रूप को रखने का कारण यह दिखाना है कि यह कितने महत्वपूर्ण थे और कैसे बार-बार दुहराए गए हैं।

III) फिरोज शाह का द्वितीय नियम

(बर्नी, 574; अभी तक इसके अनुवाद का प्रकाशन नहीं हुआ है। वह अध्याय जिसमें इस नियम की चर्चा की गई है, अनिशयोक्तिपूर्ण है और इसमें लिखी सभी बातों को इतना महत्व भी नहीं दिया जाना चाहिए। फिरोज़ की सामान्य नीति के विवरण के विषय में इस पर विश्वास न करने का कोई कारण भी नहीं है)।

1) **द्वितीय नियम :** यह निर्देश दिया गया कि राजस्व की मांग और जज़िया (1) की वसूली ''उत्पाद के नियम'' से की जाएगी;
2) और ''संविभाजन'' तथा ''मांग में बढ़ोत्तरी'' तथा ''फसल का नष्ट होना'' और ''अनुमान के आधार पर अधिक मांगना'' इत्यादि से किसानों को पूरी तरह मुक्त कर दिया गया (2);
3) और ठेके पर राजस्व की वसूली करने वालों, ज़मीन को बर्बाद करने वालों और राजस्व की मांग को बढ़ाने की बात करने वालों (3) को राज्य और प्रांतों में न रहने दिया जाय।
4) और **महसूल-ए मुआमलाती** (4) को कम कर दिया गया ताकि किसान स्वेच्छा से बिना कष्ट के अदायगी कर सकें;
5) किसानों पर कोई हिंसा या दमन नहीं हो इस बात की पूरी कोशिश की गयी क्योंकि मुसलमानों के खज़ाने (5) के मालिक वे ही हैं।

टिप्पणियाँ

1) **जज़िया** का संदर्भ सबसे अधिक उलझन पैदा करने वाला है। अफीफ के अनुसार (383) दिल्ली में यह कर प्रत्येक व्यक्ति पर निर्धारित नकद अदायगी की राशि थी। इसकी संभावना है कि किसानों के लिए यह राजस्व के साथ ही लगाया जाता हो और राजस्व की मात्रा के साथ इसकी राशि बदलती हो। यह भी संभव है कि **जज़िया** व राजस्व निर्बाध रूप से प्रयुक्त हुए हैं और मुस्लिम प्रजा के ऊपर करों के उत्तरदायित्व का सामान्य अर्थ में विवरण देते हैं।
2) यह धारा किसानों पर लगाये जाने वाले परिचित कर को बताने वाली है। **किस्मत**, फसल नष्ट होना, **नबूदा** पिछले उद्धरण में भी मिलते हैं। वहाँ **मुआतदुदहा** काफी मात्रा में रकम के अर्थ में प्रयोग हुआ है यहां पर **तसव्वुरी** का अर्थ यह होना चाहिए कि यह सब एकतरफा थे और ''अनुमान पर आधारित'' थे।
3) यह उद्धरण भी पिछले का ही अर्थ देता है जो राजस्व के आकलन में विभिन्न शब्दों के रूप में स्वाभाविक रूप में आते हैं।
4) **महसूल-ए मुआमलाती** । इस मुहावरे का सही अर्थ अभी तक किसी भी अनुच्छेद में नहीं मिला है। इसका संदर्भ तो यह बता सकता है कि यह कर किसानों पर लगाये जाने वाले **खराज** या राजस्व से भिन्न है। परन्तु इसकी प्रकृति के विषय में केवल अनुमान लगाया जा सकता है।
5) खज़ाना, **बैत-उल माल** । यह इस्लामी कानून का परिचित शब्द है जहाँ **खराज** या अन्य करों को जंमा किया जाता था। यह मुसलमानों के हितों के लिए प्रयोग होने वाला धन था परन्तु भारत में इस काल तक यह राज्य के राजस्व व आय का एक भाग था।

IV) फिरोज शाह का कर निर्धारण

(अफीफ, पृ. 94; इसका कोई अनुवाद नहीं मिला है; इलियट में केवल एक वाक्य देखने को मिलता है (खंड III, पृ. 288)।

1) राजा ने ………. राज्य की माँग (1) को पुनः निर्धारित किया। इसके लिए ख्वाजा हिसामुद्दीन जुनैद की नियुक्ति की गई।

2) अत्यन्त योग्य ख्वाजा 6 वर्षों तक राज्य में रहा.
3) "निरीक्षण के नियम" के आधार पर माँग को निर्धारित कर दिया गया (2),
4) कुल निर्धारित राशि (3) 675 लाख **टंका** आंकी गई जो संप्रभुता के सिद्धांत के आधार पर निश्चित की गई।
5) फिरोज़शाह के चालीस वर्षों के शासनकाल में यह राशि अपरिवर्तित रही।

टिप्पणियाँ

1) "मांग", **महसूल**। अफीफ ने अक्सर इस शब्द का प्रयोग राजस्व मांग अथवा **खराज** के लिए किया है। जहां तक मुझे ज्ञात है उसने कभी इसका प्रयोग "ज़मीन की उपज" के संदर्भ में नहीं किया, जैसा कि बाद के लेखकों ने किया।
2) "निरीक्षण के नियम", **हुक्म-ए मुशाहदा** शब्द साहित्य में तथा और किसी दूसरी जगह, जहाँ तक मैं जानता हूँ, देखने को नहीं मिलता। बर्नी ने पिछले उद्धरण में यह बताया है कि फिरोज़ ने सत्तारोहण के समय "उत्पाद के नियम" को अपनाया। अफ़ीफ का विवरण भी इसी समय का है क्योंकि यह नियुक्ति सुल्तान के दिल्ली आने के तुरंत बाद की गई या तो दोनों में से किसी लेखक ने कोई गलती की या फिर दोनों का एक ही अर्थ है। गलत होने की संभावना कम है, क्योंकि पुराने नौकरशाह जो लेखक बने, वे तकनीकी शब्दों का दुरुपयोग नहीं करते थे। यह ठीक है कि अफीफ की शब्दावली बर्नी से भिन्न है, खासकर **खोत** तथा **परगना** को लेकर। लेकिन शाब्दिक भिन्नता से अर्थ की भिन्नता नहीं झलकर्.

   मुशाहदा से सामान्य तात्पर्य "अवलोकन" या "देखना" है; और दोनों वक्तव्यों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए इसका प्रयोग अनुमान के आधार पर हिस्से में बांटना है। यहां संदर्भ उस व्यक्ति से है, जो उपज का निरीक्षण या अवलोकन करते हैं ताकि उपज का अनुमान लगा सकें। हम यह कह सकते हैं कि बर्नी के अनुसार, बटाई की जानी चाहिए, जबकि अफीफ कहता है कि अनुमान के आधार पर बटाई होनी चाहिए, वास्तविक हिस्से में बांटना नहीं। अफीफ स्पष्ट रूप से कहता है कि यह अनुमान पर आधारित हिस्सेदारी है, न कि उपज का वास्तविक रूप से बांटना। मुगल काल में **मुशाहदा** शब्द की विलुप्ति समझ में आती है क्योंकि इस समय तक इस प्रक्रिया को समझने के लिए हिन्दी शब्द **कनकूत** प्रयोग किया जाने लगा था।

   राजस्व की मांग प्रत्येक मौसम की फसलों के साथ परिवर्तित होती रहती थी। इसकी मात्रा इस बात पर निर्भर करती थी कि कितने क्षेत्र में फसल बोई गई और उपज कितनी हुई। इसलिए **बस्तन** या "निर्धारित करना" का अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि पहले से निर्धारित धन (**टंका**) के रूप में राजस्व। मैं इसका अर्थ यह समझता हूं कि राजस्व निर्धारण की पूरी पद्धति पुनः व्यवस्थित की गई, क्योंकि पिछले शासक के काल में अराजकता फैली हुई थी।

3) "कुल योग", **जमा,** बाद के काल के साहित्य में इसके दो परिभाषित अर्थ हैं। इसकी व्याख्या परिशिष्ट "ए" में की गई है। **जमा-ए माल** , यह राजस्व मांग का कुल योग है। **जमा-ए विलायत** (या **परगनाता**) यह वह मूल्यांकन था जिसके आधार पर उक्त अनुदान दिए जाते थे। इस उद्धरण में पहला अर्थ उचित नहीं है। राजस्व की मांग की तुलना में कुल मांग एक भिन्न प्रक्रिया द्वारा निर्धारित होती थी; क्योंकि वह मांग जो हर ऋतु में परिवर्तित होती है, चालीस वर्षों तक अपरिवर्तित रहने वाली मांग के समकक्ष नहीं हो सकती। ग्रंथ में **जमा-ए ममलकत** लिखा गया है, जो **जमा-ए विलायत** का ही एक भिन्न रूप है। इस स्थिति में मूल्यांकन का सही अर्थ निकलता है। हम लोगों ने अध्याय 11 में पाया कि मूल्यांकन पूर्व के शासकों के काल में भी किया जाता था और यह किसी भी अनुदान व्यवस्था की प्रमुख विशेषता है। हमने यह भी देखा कि प्रचलित मूल्यांकन वास्तविकता से बहुत भिन्न था। मैं इस उद्धरण को इस रूप में देखता हूं कि यह हमें बताता है कि ख्वाजा ने कर निर्धारण की पद्धति को व्यवस्थित किया और छह साल के अनुभव के पश्चात् एक नया मूल्यांकन तैयार किया, जो शासन के संपूर्ण काल तक मान्य रहा।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

तपन राय चौधरी और इरफान हबीब : **द कैम्ब्रिज इकानॉमिक हिस्ट्री, खंड I (अंग्रेजी)**

प्रो. मुहम्मद हबीब : **एन इन्ट्रोडक्शन टू इलियट एण्ड डाउसन्स हिस्ट्री ऑफ इंडिया एज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, खंड II (अंग्रेजी)**

ए.जे. कैसर : **इण्डियन रेस्पोंस टु यूरोपियन टेक्नालॉजी एण्ड कल्चर (अंग्रेजी)**

के.एस. लाल : **खलजी कालीन इतिहास (हिन्दी संस्करण)**

इरफान हबीब (सम्पादित) : **मध्यकालीन भारत,** खण्ड 1

मौहम्मद हबीब व के.ए. निज़ामी : **दिल्ली सल्तनत**